श्रीपाल कथा अनुप्रेक्षा

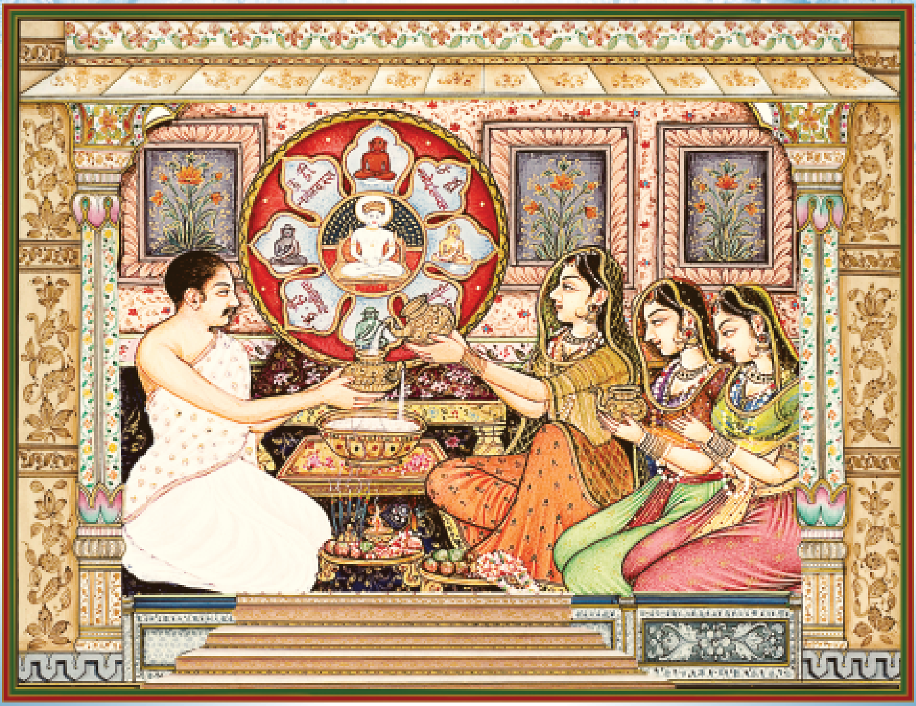

आ.श्री नयचंद्रसागरसूरि म.सा.

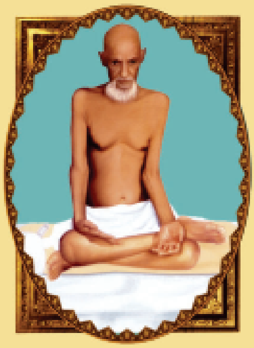

आगमोद्धारक प.पू.आचार्यदेव
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी म.सा.

सिद्धचक्र आराधक
पू.आ.श्री चन्द्रसागरसूरीश्वरजी म.सा.

शासनसुभट
पू.महोपाध्याय श्री धर्मसागरजी म.सा.

साधक-वाचक-संशोधक
पू.पंन्यासप्रवर श्री अभयसागरजी म.सा.

शासनप्रभावक
पू.आ. श्री अशोकसागरसूरि म.सा.

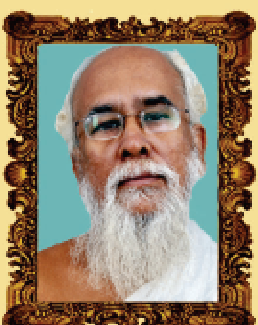

प्रभुभक्ति रसिक
पू.आ.श्री जिनचंद्रसागरसूरि म.सा.

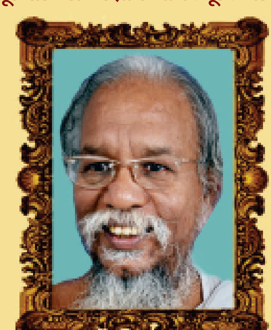

व्याख्यानकुशल
पू.आ.श्री हेमचंद्रसागरसूरि म.सा.

तत्त्वज्ञ निस्पृहि
पू.मुनि श्री पूर्णानंदसागरजी म.सा.

श्रीपाल कथा अनुप्रेक्षा

...लेखक...

बांधव त्रिपूटी, शासनप्रभावक
पू.आचार्य श्री हेमचंद्रसागरसूरिजी म. के शिष्यरत्न
वर्धमान तपोनिधि पू.आचार्य नयचंद्रसागरसूरिजी म.

...हिन्दी अनुवादक...

आगमोद्धारक सागर समुदाय के
साध्वीश्री पूर्णयशाश्रीजी के प्रशिष्या
साहित्यरत्ना पू.साध्वीश्री पद्मवर्षाश्रीजी म.सा.

श्रीपाल कथा अनुप्रेक्षा

पूर्णानंद प्रकाशन, अमदावाद

प्रथम आवृत्ति : २०१८
चैत्र मास की शाश्वती ओलीजी

नकल : २०००

मूल्य : रु. 60/-

मुद्रक : मन ग्राफिक्स, सुरत

गुजराती आवृत्ति

प्रथमावृत्ति : २००० नकल (२०१६)
द्वितियावृत्ति : ३००० नकल (२०१७)

पू. साधु–साध्वीजी
भगवंतो को
एवं ज्ञानभंडारो
को भेंट

...प्राप्तिस्थान...

पूर्णानंद प्रकाशन

धरणेन्द्र एम. शाह
अे–204, प्रेरणा विराज–2,
चंदन पार्टी प्लोट के सामने,
जोधपुर गाँव, सेटेलाइट, अमदावाद
मो. 93768 60712 (धरणेन्द्र)

संजय जे. हीराणी
मधुसुदन अेपार्टमेन्ट, पहले माले,
गीतांजली, बोरीवली–मुंबई
मो. 98700 27766

सुभाषभाई व्रजलाल वोरा
'नवकार' बंगलो, गली नं ४,
सीविल होस्पिटल के पास,
सांगली (महाराष्ट्र)

धवलभाई गंगर
1243/2, सरदार सहनिवास
भावे गेस एजन्सी के सामने,
आप्टे रोड, डेक्कन जिमखाना,
पूणे (महाराष्ट्र)

श्री नवकार परिवार
C/o. प्रविण श्रीश्रीमाल
४३१, कालानी नगर, जैन श्वेतांबर मंदिर–
के पास, एयरपोर्ट रोड,
इन्दौर (म.प्र.)–452001
मो. 94245 04078

समर्पण

जिनकी...
सेवा मे सतत नौ वर्ष रहने का
मौका मिला ।

जिनकी...
पुण्य-प्रभावक निश्रा से चिंतन शक्ति के
द्वार खूले ।

जिन्होंने...
सर्वप्रथम संस्कृत में श्रीपाल-कथा पढने के लिए
बाध्य किया ।

जिनके...
सान्निध्य के प्रभाव से तत्त्वस्पर्शन की कुछ
अनुभूति हुई ।

ऐसे...

पूज्यपाद् तत्वज्ञ विद्धद् निस्पृही निराशंसी

मुनिवर श्री पूर्णानंदसागरजी महाराज के

करकमलो में

- नयचंद्रसागर

दिव्य आशीर्वाद

देवसूर तपागच्छ सामाचारी संरक्षक,
आगमोद्धारक पू.आ.देव
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी म.सा.

सिद्धचक्रसमाराधक पू.आ.देव
श्री चंद्रसागरसूरीश्वरजी म.सा.

शासनसुभट, उग्रसंयमी पू. महोपाध्याय
श्री धर्मसागरजी म.सा.

नमस्कार महामंत्र साधक, आगम विशारद पू.पंन्यास गुरुदेव
श्री अभयसागरजी म.सा.

तत्त्वज्ञ, निःस्पृही मुनिप्रवर
श्री पूर्णानन्दसागरजी म.सा.

शुभ आशीर्वाद

जिनागमसेवी पू.गच्छाधिपति आ.देव
श्री दौलतसागरसूरीश्वरजी म.सा.

बांधव-त्रिपुटी

शासन-प्रभावक पू.आ.देव
श्री अशोकसागरसूरिजी म.सा.

जिनभक्ति-रसिक पू.आ.देव
श्री जिनचंद्रसागरसूरिजी म.सा.

प्रवचन-प्रभावक पू.आ.देव
श्री हेमचंद्रसागरसूरिजी म.सा.

...सुकृत के सहभागी...

प्रकाशकीय

कथा में जब चिंतन / अनुप्रेक्षा मिलती है तब वह कथानुयोग बनता है और उस कथानुयोग में जब आत्मप्रेक्षा जुड़ती है, तब वह कल्याणकारी बनता है ।

श्रीपाल–कथा यूँ तो जिनशासन में आबाल–वृद्ध तक प्रसिद्ध है । हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, प्राकृत में अनेक प्रकाशन हो चुके है, लेकिन यह अनुप्रेक्षामय पुस्तक आत्मानुप्रेक्षा बनाने वाली पुस्तकों में सबसे पहली है ।

शासनप्रभावक पू.आ.श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म. के शिष्यरत्न वर्धमान तपोनिधि शिष्य शिल्पी पू.आ.श्री नयचंद्रसागरसूरि म. द्वारा लिखित आराधक भाव के गुणों पर प्रकाश ड़ालती इस पुस्तक के प्रकाशन का लाभ हमारी संस्था को मिलने का अति आनंद है, इसके लिए हम पूज्यश्री के ऋणी है।

पुस्तक के मुखपृष्ठ को आकर्षक बनाने के लिए श्री प्रेमलभाई कापड़िया ने अपने चित्रसंग्रह में से श्रीपाल–मयणा के जीवन प्रसंग के विविध चित्र उदारता से दिए हैं, इसके लिए दिल से आभारी हैं ।

पू.आ.देव श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म.सा.ने व्यस्त होने के बावजूद प्रस्तावना लिखकर हम पर उपकार किया है ।

वि.सं. २०१६ और २०१८ में गुजराती भाषा में दो–दो आवृत्ति प्रकाशित हुई । वाचक वर्ग और आराधक वर्ग की तरफ से इन दोनो आवृत्तिओ को सुंदर प्रतिभाव प्राप्त हुआ और साथ ही हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित करने की मांग वाचक वर्ग की तरफ से उद्भवी और सतत मांग बनी रही । अतः सागरसमुदायवर्तिनी पू.साध्वीजी श्री पूर्णयशाश्रीजी की शिष्या पू.साध्वीजी श्री मेघवर्षाश्रीजी म.की शिष्या साहित्यरत्ना पू.सा.श्री पद्मवर्षाश्रीजी म.ने प्रस्तुत हिन्दी भाषांतर करने की विनंती पर उन्होंने सरल और रसप्रद भाषा में भाषांतर किया । पू.साध्वीजी म.की श्रुतभक्ति की संस्था अनुमोदना करती है।

पू.मुनि श्री ऋषभचंद्रसागरजी म.ने प्रुफ की जवाबदारी निभाकर प्रकाशन कार्य सरल बनाया है । उनकी श्रुतभक्ति की अनुमोदना ।

पूज्यश्री के चिंतन को कलम के माध्यम से अभिव्यक्ति प्राप्त होती रहे, यही शुभ भावना...

– पूर्णानंद प्रकाशन

प्रस्तावना

– पू.आ.श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म.

पैंतालीस लाख योजन के मनुष्य क्षेत्र में एक साथ किसी अनुष्ठान की आराधना होती हो तो वह है नवपदजी की आराधना और वह भी अनादि अनंत है । यह आराधना शाश्वत है, सनातन है । इसके न आदि का छोर है और न अंत का छोर है, नवपद आराधना यानि समग्रतया संपूर्ण जिनशासन की आराधना ।

नौ दिनों की यह आराधना इन्हीं दिनो में क्यों ?

क्योंकि ये दिन अयन संधि के हैं । उत्तरायण और दक्षिणायन का मिलन काल है, और इस संधिकाल का विशेष प्रभाव है। सामान्य से दूसरे समय में आराधना करो और संधि समय में करो, बहुत फर्क है । जिनशासन में संधिकाल का महत्त्व और प्रभाव बहुत बताया गया है । इस लिए जितने भी संधिकाल है, उन्हे साधने के लिए कोई न कोई अनुष्ठान बताया ही गया है । ऐसा ही एक अनुष्ठान है नवपद–ओली ।

पिछले कुछ बरसों से ओली के आराधको की संख्या में वृद्धि होती रही है । इससे पूज्य महात्माओं के व्याख्यान की अपेक्षा भी बढी है । इससे प्रवचन में नवपदजी और श्रीपालचरित्र के विषय का विश्लेषण होता है । यूँ तो श्रीपाल चरित्र एक कथा ही है, परन्तु तत्त्वचिंतक पूज्यश्री श्रीपाल–चरित्र के पात्र और घटनाओं के पीछे रहे रहस्य को प्रगट करते हैं । हम तो सोच भी नहीं सकते कि यह घटना इतना सुंदर संदेश देती है । जानने के बाद आश्चर्य भी होता है और अहोभाव भी ।

इस विषय में हमारे परम तारक पू.गुरुदेवश्री अभयसागरजी म. की विशेषता :–

जब जब पूज्यश्री के नवपद विषयक व्याख्यान और श्रीपाल–मयणा के जीवन–चरित्र की घटनाओं का मर्म–स्फोट होता, उसमें कर्मग्रंथ की बाते सामाजिक रीतियों की बातें और अपने जीवन के कर्तव्यो का अंगुलि–निर्देश सुनने को मिलता तब आँखे विस्मय से छलक उठती, आनंद आता ।

ऐसी ही एक रहस्य यात्रा का अनुभव इस पुस्तक को पढ़कर हुआ ।

हमारे सुविनेय आ. श्री नयचन्द्रसागरसूरिजी ने अपने चिंतन–कलश से श्री श्रीपाल–मयणा के जीवन–चरित्र पर अभिषेक किया तब कई आच्छादित वास्तविकताओं का घटस्फोट हुआ । जैसे कि –

- उंबर और मयणा पहली ही बार मिलते हैं और दोनो के बीच जो संवाद होता है उसमें स्पष्ट पता चलता है कि उंबर ने मयणा में दिव्यता के और मयणा ने उंबर में सत्त्व के दर्शन किए ।

- सच्चे धर्म की प्राप्ति के लिए पुण्योदय से ज्यादा आत्मशुद्धि अनिवार्य है ।

- आज प्रभु–भक्ति में संगीतकार और विधिकार की महत्ता बढ़ गई है । संगीतकार स्तवन और विधिकारक विधि के बजाय भाषण–प्रवचन पर ध्यान देने लगें हैं । पता नहीं चलता है कि ऐसा करने से मूलभूत तत्त्व के रुप में बिराजमान प्रभु गौण हो जाते हैं और आशातना के भागी बनना पड़ता है ।

- श्रीपाल कुमार विदेश जाते है तब मयणा को माता के पास रखते है और मयणा भी बात मान जाती है । इससे मयणा एक संदेश देती है कि लगाव से कर्तव्य का विशेष महत्त्व है । यह संदेश पत्नि–भक्तों को सीख देता है कि माता भक्त बनो, पत्नि भक्त नहीं ।

- देवों से मानव की महत्ता अधिक है क्योकि देवो के पास भव प्रत्ययिक शक्ति होती है, जो पुण्य के आधीन है और मानव के पास गुणप्रत्ययिक शक्ति होती है, जो पुरुषार्थ के आधीन है ।

- आर्य–संस्कृति में ससुरजी का कुछ नहीं लिया जाता, दूसरे का भी नहीं लिया जाता, परन्तु मामा की ओर का सब लिया ही जा सकता है । इसी उक्ति के अनुसार श्रीपाल–मयणा मामा के घर रुकते है, फिर विदेश यात्रा पर निकल जाते है ।

- मयणा के सिर पर जब विपत्ति के बादल घिर आए, तब मयणा स्वस्थ कैसे रह सकी ? उनके जीवन में ३ मंत्र अस्थिमज्जावत् बन चुके थे– भूतकाल को याद नही करना, भविष्य के सपने नहीं देखना, बस वर्तमान सम्हाल लो । सबको अपनाने जैसी यह सीख है ।

- आज के लिए जैन साधु के लिए वर्तमान जोग का व्यवहारिक उपयोग बताया है । इस विषय का सुंदर विश्लेषण प्रगट किया है ।

- मयणा, उंबर राणा के पास आई तब प्रयोगिक वर्तन द्वारा उंबर ने संदेश दिया कि योग्यता से अधिक की अपेक्षा नहीं करना और मिल जाए तो स्वीकारना भी नहीं ।

- दूसरे का नुकसान दूर करने के लिए खुद नुकसान में उतर जाना मंद मिथ्यात्व की निशानी है ।

- अपने नुकसान को दूर करने के लिए दूसरों के लाभ में अवरोध खड़ा करना क्षुद्रता की निशानी है ।

- भवाभिनन्दी के आठ दोषो का वर्णन और धवल शेठ का वृत्तान्त अच्छी तरह समझाया है । ऐसे कई संदेश और संकेत इस अनुप्रेक्षा के प्रवाह में समझने को मिलते है। इनसे यह खयाल आता है कि श्रीपाल–मयणा की कथा मात्र कथा नहीं है, परन्तु जीवन में अपनाने जैसे अनेक संदेशो का योग है ।

- सुविनेय आत्मीय श्री नयचंद्रसागरजी के माध्यम से ऐसे अनेक कथानक प्रकाश में आए यही अंतर की अभिलाषा और आकांक्षा ।

–हेमचन्द्रसागर

लेखकीय

जिनशासन के कथानुयोग में श्रीपालकथा एक महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय ग्रंथ है । चैत्र और आसोज (कुंवार) महिने की शाश्वत ओली में सभी जैन संघों में इस ग्रंथ पर प्रवचन होते है । कई महापुरुषों ने अनेक भाषाओं में इस पर रसप्रद निवेदन किया है ।

पूज्य तत्त्वज्ञ मुनिश्री पूर्णानन्दसागरजी म.सा. शाश्वती ओली में किसी न किसी एक श्रीपाल कथा पढ़ने के लिए छोटे छोटे साधु महात्माओं को आज्ञा करते । अलग–अलग श्रीपालकथाएँ पढ़ते पढ़ते कुछ समस्याएँ खड़ी होती, उनके निवारण के लिए पूछने पर पू. तत्त्वज्ञमुनिश्री ने वर्तमान श्रीपाल कथाओं के मूल समान पू.आ.देव श्री रत्नशेखरसूरि म.द्वारा प्राकृत भाषा में रचित 'सिरि सिरिवाल कहा' पढ़ने के लिए सूचन किया । यह ग्रंथ पढ़ते लगा कि ग्रंथरचना की मर्यादा के कारण हर श्रीपाल–कथा में कोई न कोई कथांश गौण किया गया है । इससे सुरत–शिखरजी के संघ दरम्यान एक छोटा प्रयास किया और सिरिसिरिवाल कहा ग्रंथानुसार सर्व कथांशो को लेकर ११५२ श्लोक प्रमाण संपूर्ण 'श्रीपाल मयणाऽमृत काव्यम्' की रचना हुई । लगभग ६ मास तक श्रीपाल कथा चित्त में घूमने के कारण व्याख्यान या चिंतन के समय नई–नई तत्त्व–स्फुरणाएँ होती रही । ये बार–बार ओली के व्याख्यान में आने लगी । श्रीपाल कथा में मयणा की महत्ता से श्रीपाल की उपादान–शुद्धि, आराधक भाव, गुणवैभव, गंभीरता, सरलता, सहज कर्मोदय का स्वीकार आदि अनेक बाबतें ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगने लगी ।

उंबर में अंतरगुण वैभव नहीं होता तो मयणा संपूर्णतया निष्फल होती । उंबर–श्रीपाल के गुणवैभव के साथ–साथ अजितसेन, धवल, श्रीकान्त, मयणासुंदरी, सुरसुंदरी के पात्रों का संदेश भी व्याख्यान में आने पर लोक रुचिकर बना और पुस्तक की मांग आई । आठ वर्ष बाद पुनः आराधक श्रोताओ की चाहना और मांग को ध्यान में रखकर काम शुरु किया । जो पुस्तक आपके हाथों मे है वह तो मात्र अंगुली निर्देश स्वरुप है, चिंतक इससे अनेक गुना खोल सकते हैं । जिनशासन का कथानुयोग बंद रत्नो की पेटी जैसा है । पेटी बाहर देखने पर लकड़ी की लगती है, पर उसे खोलें तो रत्न मिलते है । चिंतक, विचारक या आराधक...अभी और ज्यादा तत्त्व संघ–समाज को दे सकते हैं । प्रत्येक कथा विभिन्न तत्त्वसभर दृष्टिकोणों से सोची जा सकती है ।

इस पुस्तक की पांडु लिपि की प्रेस कॉपी करने में जेसर बेन (बरोड़ा), हेतलबेन (मलाड़) एवं सा.कल्पपूर्णाश्रीजी म. और प्रूफ चेक के लिए मुनि ऋषभचंद्रसागर, मुनि अजितचन्द्रसागर, सा. पूर्णिताश्रीजी म., सा.श्री दिव्यताश्रीजी म. आदि का प्रयास अनुमोदनीय है ।

अंत में, उंबर का गुणवैभव, सत्त्व और मयणा का विवेक, दृढ़ता, श्रद्धा आदि जीवन में आराधक भाव के लिए जरुरी है । ऐसे गुणो की आंशिक भी प्राप्ति किसी वाचक को हुई हो तो, श्रम की सफलता मानकर विराम लेता हूँ ।

–नयचन्द्रसागर

अनुक्रम

प्रकाशकीय

प्रस्तावना

लेखकीय

1. उंबर (श्रीपाल) गुणदर्शन 1

वर्तमान में जीना सीखो 2

जो स्थिति आए, उसका स्वीकार कर लो 3

वर्तमान योग्यता से अधिक अपेक्षा नहीं रखना 5

योग्यता से अधिक मिल जाए, तो स्वीकार नहीं करना 5

योग्यता से अधिक नहीं स्वीकारने पर भी मिल जाए तो खुश नहीं होना 6

दूसरो के नुकसान से होने वाला फायदा कभी इच्छनीय नहीं 7

गंभीर बनिए, धीर बनिए 8

सती की बात पर न तर्क, न दलील 9

जहाँ श्रद्धा वहाँ सर्वस्व, समर्पण वहॉ चमत्कार 10

प्रभुदर्शन प्रणिधानपूर्वक 12

दर्शन से पापनाश 13

उपादान (योग्यता) शुद्ध करो, उत्थान होगा ही 14

जो भी धर्मक्रिया करनी है, वो योग्य रीति से सीखो 14

सिद्धचक्रजी कब फलते है ? 15

पर से नहीं, स्व से पहचाने जाओ 16

माता के प्रति आदरभाव रखो, सेवा करो 17

	दूसरों कि मेहनत का लिया नहीं जाता	18
	कौन सी शक्ति आगे, देव की या मनुष्य की ?	19
	दूसरों का मिल जाए तो भी लेना नहीं	20
	पुण्य पर पूरा भरोसा	21
	भाग्य अजमाने के लिए सबको मौका दो	23
	वैभव–संपत्ति में डूबना नहीं	23
	दुश्मन से भी मैत्रीभाव	24
	प्रभु मिले तो निर्भीक बनो	25
2.	क्या बनना है ? धवल या श्रीपाल	28
3.	मैं कौन ? श्रीपाल या श्रीकान्त ?	35
4.	पराकाष्ठा; उपकार और अपकार की	42
5.	अधिक क्या ? श्रीपाल को मिला वो या श्रीपाल ने छोडा वो ?	46
6.	मयणा (मदना) और सुरसुंदरी	49
	कैसी है मयणा की श्रद्धा	53
	सच्चा कौन ?	54
	तप कब पूरा होता है ?	54
7.	एक अनुचिंतन...श्रीपाल कथा यानि अपनी आत्मकथा	56
8.	श्रीपाल कथा का रचना कौशल	59
9.	किया हुआ धर्म कभी निष्फल नहीं होता	63
10.	नवपद बनाए...भवाभिनंदी से आत्मानंदी	65
11.	परिशिष्ट १...पूजनो में मंडल आलेखन(मांडला) रहस्य : एक अनुचिंतन	81
12.	परिशिष्ट २...पूजन अखंड कब बनता है ?	85
13.	श्रीपाल कथा–प्रसंग–नामावलि संक्षिप्त में	88

वाचक बने आत्मानुप्रेक्षक

‘श्रीपाल कथा अनुप्रेक्षा’ पुस्तक चिंतन–नवनीत है ।

अपनी आत्मा के साथ तुलना–दर्शन करने के
लिए चिंतन है ।

हमारे जीवन में आनेवाले प्रसंगो में हमारी मनोस्थिति
और प्रकृति कैसी रहती है ?
और उंबर–श्रीपाल की कैसी है ।

इसका चिंतन वाचक को करना है ।

इससे ...यह पुस्तक

एक ही बैठक में पढ़ लूँ और बाजू पर रख दूँ,
ऐसा विचार मत कीजिएगा, परन्तु यह पुस्तक...

ध्यानपूर्वक

चिन्तनपूर्वक

आत्मतुलनापूर्वक

पढ़ने का आग्रह रखिएगा ।

।। ॐ ह्रीं श्रीं सिद्धचक्राय नमः ।।

1. उंबर–श्रीपाल गुणदर्शन

पूज्य आचार्यदेव श्री रत्नशेखरसूरि म.साहेब ने श्रीपाल कथा रचकर जैन–अजैन जगत पर अनहद उपकार किया है । श्रीपाल कथा मात्र कथा नहीं परन्तु कथानुयोग है । कथा ओर कथानुयोग में क्या अंतर है ।

कथा यानि मात्र कथा सुनकर कर्णानंद पाना ।

कथानुयोग यानि ?

कथानुयोग शब्द में तीन विभाग है – कथा + अनु + योग

यानि **कथा के पीछे मन, वचन, काया के योगों को ले जाकर तत्त्व पाना यह कथानुयोग का अर्थ है और तत्त्व के माध्यम से आत्मानंद पाना यह कथानुयोग का रहस्य है ।** जैन शासन में कथा नहीं, कथानुयोग का महत्त्व है । श्रीपाल कथा, कथा नहीं, कथानुयोग है । इसका हर प्रसंग तत्त्व परोसता है । आत्मानंद की अनुभूति करने के लिए यह महान ग्रंथ है पर उसे पाने के लिए सूक्ष्मदृष्टि (विचारसरणी) चाहिए, जो मिलती है गुरुगम से या मोह की मंदता से तत्त्व श्रवण–चिंतन करने से ।

पू.आचार्य भगवंत में कथा रचना का अद्‌भुत कौशल्य है । श्रीपाल कथा के प्रारंभ में कोढ़ी रुप में श्रीपाल का प्रवेश करवाया है । रुप–रंग, नाम, परिवार सब बेढ़ंगा है । नाम उंबर है, शरीर में संक्रामक कोढ़ रोग है । राजा होने के बाद भी दर–दर भटकता है, अकेला है । कुष्ठरोगियों के साथ रहना पड़ रहा है, लोग धिक्कार रहे है । इस प्रस्तुतिकरण में प्रस्तुतकर्ता

आचार्य भगवंत का रहस्यमय आशय है ।

सिद्धचक्र की आराधना निर्धन, रोगी अकेला करे तो भी फलती ही है । **आराधना के लिए बाह्य संपत्ति नहीं, आंतर वैभव की जरुरत है ।** इस रहस्य को उंबर के माध्यम से आचार्य भगवंत ने उजागर किया है । उंबर राणा का बाल स्वरुप जितना बदसूरत है, अंतर गुण वैभव से उतना ही खूबसूरत है । सिद्धचक्र के परिणाम पाने के लिए संपत्ति नहीं, गुण जरुरी है, जिनका दर्शन उंबर राणा में होता है । मयणा मिलने के बाद ही सिद्धचक्र (धर्म) उंबर को मिला, इससे हम यह मानते हैं कि श्रीपाल कथा में मुख्य पात्र मयणा है । मयणा के कारण उंबर श्रीपाल बने यह स्थूलदृष्टि की विचारणा है । सूक्ष्मदृष्टि या तत्त्वदृष्टि से निदिध्यासन (चिंतन) किया जाए तो उंबर महान और गुणवान लगेंगे । यह भी आसानी से समझ में आ सकेगा कि सिद्धचक्र के फलने में उंबर की स्वयं की योग्यता थी । सूर्योदय से पहले उजास स्वयंभू होता है, वैसे ही मयणा या धर्म मिलने से पहले की योग्य भूमिका=उपादान की शुद्धि उंबर की खुद की थी । उंबर में प्राथमिक गुणों का भंडार था । **मयणा को गुणवान आराधक उंबर मिला तो मयणा सफल और प्रभावक बना सकी इसलिए कथा का नाम 'मयणा कथा' नहीं, 'श्रीपाल कथा' है ।** इस कथा में मयणा की अपेक्षा उंबर=श्रीपाल महत्त्वपूर्ण पात्र है । श्रीपाल कथा के वास्तविक रहस्यों को समझने के लिए इतना खयाल जरुर होना चाहिए कि मयणा से मिलने के पहले भी श्रीपाल में गुणसमृद्धि का आत्मवैभव अजब–गजब था । उसे पहचानना जरुरी है । मयणा मिलने के पहले वाला उंबर राणा हमें मूक उपदेश दे रहा है । एकाध उपदेश जीवन में अपना लेंगे तो हमें भी सिद्धचक्र अवश्य फलेगा ।

वर्तमान में जीना सीखो

उंबर राणा एकदम खराब हालत में है । गाँव गाँव भटक रहा है । हर राज्य के राज दरबार में जाता है पर अपनी दयनीय स्थिति कही दर्शाता नहीं है । अपना पूर्वकाल प्रदर्शित कर कहीं याचना नहीं करता है । भूतकाल

की परिस्थिति या भावि के स्वप्न किसी के सामने कभी नहीं कहे । **उंबर कहता हे कि भूत–भावि को छोडकर वर्तमान में जीना सीखो । भूतकाल को याद करोगे तो दुःखी हो जाओगे, भावि के सपनों में वर्तमान गुमाओगे ।** वर्तमानस्थिति को आनंद से स्वीकारना उंबर सीखाता है । आराधक आत्मा वर्तमान में ही जीता है, इससे ही साधुभगवंत 'वर्तमानजोग'● शब्द वापरते है ।

जो स्थिति आए उसका स्वीकार कर लो ।

श्रीपाल जन्मजात राजबीज है, सौंदर्यवान राजकुमार है । दो वर्ष की उम्र में राज्याभिषेक हो गया है, चारों ओर खम्मा खम्मा हो रही है । दुःख क्या होता है, पुण्य कर्म की प्रचुरता कें कारण सत्ता, संपत्ति, वैभव सब मिला है, किंतु कर्म ने करवट बदली और एक ही रात में सब छोड़ना पड़ा ।

● वर्तमान जोग साधु भगवंतो के मुख से रोज सुनते है । गोचरी की प्रार्थना करने से साधु–साध्वी भगवंत वर्तमान जोग शब्द बोलते हैं । वर्तमान जोग हमारा पारिभाषिक शब्द है ।

गोचरी की विनंती के बाद गुरुमुख से सुने जाते वर्तमान जोग शब्द से कदाचित् आप ऐसा समझते होंगे कि महाराज साहेब को खप होगा तो पधारेंगे. जरुरत होगी तो पधारेंगे । नहीं, ऐसा कोई अर्थ नहीं होता । आप आहार संबंधी बात करते है, जबकि गुरुदेव गोचरी की बात छोडकर अलग ही बात करते है । गोचरी के लिए आएंगे, नहीं आएंगे, खप है, खप नहीं है – ऐसी कोई बात नहीं करते हुए सिर्फ इतना ही कहते है – वर्तमान जोग

जोग=योग यानि मन–वचन–काया अर्थात् हमारे मन–वचन–काया के योग सदा वर्तमान में प्रवर्तित होते हैं । हमारी जीवन पद्धति वर्तमान में रहने की है । भूतकाल की जुगाली नहीं करना, और भविष्यकाल के सपने नहीं देखना । दोनो काल हमारे हाथ में नहीं है । वर्तमानकाल हमारे हाथ मे हैं, उसे साध लेने में ही जीवन की सफलता है । वर्तमान काल (समय) हाथ में से निकलने के बाद लौटकर नहीं आता । यह उपदेश हमारी विनंती के जवाब में गुरुदेव बताते हैं ।

'श्रीपाल का राज्यादि लेकर जान से खत्म कर दूँ ।' काका अजितसेन की इस दुर्बुद्धि का पता चलते ही छोटी उम्र में जान बचाने माता कमलप्रभा श्रीपाल को लेकर भागी ।

बाल्यावस्था में ही सत्ता गई, संपत्ति गई, वैभव गया । जवानी में शरीर मे कोढ़ रोग हो गया, शरीर सड़ गया । श्रीपाल को पड़ोसियो के सुपुर्द कर माता औषधि लेने कौशांबी गई और आई नहीं । श्रीपाल माँ से भी बिछड़ गया। कोढ़ से घबराकर पड़ोसीयों ने छोड़ दिया । अंततः सात सौ कोढ़ीयों के समूह में मिल गया । इतना होने पर भी कहीं निराशा नहीं है, नहीं मरने का विचार है । शरीरमें भयंकर जलन होने पर भी चेहरे पर कोई उदासीनता नहीं है । किसी के प्रति नफरत या तिरस्कार भी नहीं है ।

उंबर राणा का स्वरुप कैसा बेहूदा है । शरीर में कुष्ठ रोग है, कुरुपता का राज है, सतत पीप निकल रहा है, शरीर पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं । रास्ते से गुजरता है तो लोग पूछते है, ''कौन हे यह । भूत, प्रेत या पिशाच?'' कोई उसे मानवरुप में स्वीकारने के लिए भी तैयार नहीं है । उसका स्वरुप देखकर पशु भी ड़र जाते हैं । ''ढोर खसे कुतरा भसे धिक् धिक् करे पुरलोक'' यह वर्णन प्रसिद्ध है । इतना होने पर भी उंबर प्रसन्न है, अंतर में अदम्य उत्साह है, दुःख दर्द की रेखा नहीं है । **जो स्थिति आई है, उसे सहजतासे स्वीकार कर ली है । उंबर की यह भूमिका मयणा मिलने के पहले की है ।**

हमारे जीवन में कदाचित् कर्मोदय पलटे और जो थोड़ा बहुत मिला है, वह भी चला जाए, परिवार से बिछुड़ जाए, शरीर बराबर काम नहीं कर सके तो हमारी हालत क्या हो ? शुभ कर्म के उदय में जो आनंद है वो आनंद अशुभ के उदय में कहा टिकता है ? **उंबर को जब तक मयणा नहीं मिली, धर्म नहीं मिला, सिद्धचक्रजी नहीं मिले, उसके पहले ही जन्मजातसहज समझ तो मिली ही है।**

पुण्य–पाप के उदय से महत्त्वपूर्ण आत्मा की भूमिका है । सूर्योदय से

पहले उजास होता है । ऐसे **भावधर्म मिलने के पहले गुण का उजास होता है, उघाड़ होता है ।** उंबर को अभी धर्म नहीं मिला है, मिथ्यात्व मंद है । मंद मिथ्यात्व की भूमिका पर आराधक भाव को खींचकर लाने वालें गुण सहज प्रकट होते है; यह बात उंबर के माध्यम से समझना है ।

उंबर हमे कहते है, ''जो भी स्थिति आती है, उसका स्वीकार कर लो, भागो मत । हर परिस्थिति कर्म के आधीन है, और कर्म हमने ही किए है ; स्वीकार में ही मजा है, निर्जरा है । प्रतिकार मत करो । प्रतिकार में सजा है, आश्रव–कर्म का ही बंध है, इसलिए सामने से आनेवाली परिस्थिति का समभाव से, आनंद से स्वागत कर लो, यह आराधक भाव की भूमिका है ।

वर्तमान योग्यता से अधिक अपेक्षा नहीं रखना ।

उंबर मूल तो राजकुमार है । राज्याभिषेक हो गया है पर सगे काका के कारण विकट परिस्थिति हो गई है । राज्य–परिवार–धन–वैभव–संपत्ति–सत्ता सब गुमाया है, तंदुरस्ती भी खोई है । सात सौ कोढ़ियो के साथ रहना पड़ा है । उन्होंने अपना नायक बनाकर उंबर राणा नाम रखा है । उम्र हो गई है । गाँव गाँव कन्या की शोध में घूम रहे है । गूंगी–लूली–लंगडी–दासी–रोगी कन्या की याचना कर रहे है ।

उंबर राणा को ख्याल है कि मैं राजबीज हूँ, राजा हूँ, भविष्य में राजा बनने के अरमान भी अंतर में बसे है । फिर भी उंबर ने कभी राजकुमारी की मांग नहीं की है । ऐसी–वैसी ही कन्या मांगी है । उंबर मानते है – अभी मेरी परिस्थिति ही ऐसी है कि **वर्तमान काल की योग्यता से अधिक अपेक्षा रखूँगा तो दुःखी ही होनेवाला हूँ ।** इच्छा करना, पर अपनी योग्यता से अधिक नहीं करना, यह समझ हीं आराधक की योग्यता है । उंबर कहते है, ''श्रीपाल बनना है, तो योग्य भूमिका से आगे बढ़कर इच्छा नहीं करना ।

योग्यता से अधिक मिल जाए तो स्वीकार नहीं करना ।

उंबर और सात सौ कोढ़ियो का टोला घूमते घूमते उज्जैन आ

पहुँचा। रास्ते में प्रजापाल राजा मिले । उनके आगे 'मूंगी–बहरी–अपंग–रोगी या हीनकुल की कन्या की ही यथोचित मांग रखी । प्रजापाल राजा ने राजदरबार में बुलाकार सोलह–श्रृंगारों से सजी अप्सरा जैसी राजकन्या मयणा देने की बात कही ।

उंबर को तो पत्थर लेने जाते रत्न मिल गया । गाँव गाँव में दैव रुठा था, यहाँ तो साक्षात् दैव प्रसन्न हो गये । सौ–दोसौ रुपये मिलने की गिनती हो और करोड़ो रुपये मिल जाए तो कितनी खुशी हो ? इंसान नाचने लग जाए, लेकिन उंबर मना कर रहा है । प्रजापाल राजा ने जैसे ही मयणा की बात रखी, तुरंत ही उंबर ने कहा 'न शोभे काक कंठे मुक्ताफल तणी माला' उंबर मयणा का स्वीकार करने से इंकार कर रहा है । लाभ कितना भी बड़ा हो, पर मेरी पचाने की योग्यता नहीं है । **पचाने की ताकत नहीं हो तो अजीर्ण हो जाता है, यह बात उंबर समझता था ।** राजकन्या मयणा के सिवाय पुनः वो पहले वाली बात ही दोहराता है । योग्यता से अधिक मिले तो स्वीकार नहीं करना, इस प्रसंग में उंबर राणा यही कर रहा है ।

योग्यता से अधिक नहीं स्वीकारने पर भी मिल जाए तो खुश नहीं होना – उंबर ने प्रजापाल राजा को मयणा के लिए मना किया, यह अनुचित हो रहा है, ऐसा कहने पर भी प्रजापाल राजा के एक वचन पर मयणा ने तुरन्त जाकर उंबर का हाथ पकड़ लिया । उंबर ने हाथ खींचा पर मयणा मजबूत रही । आखिर उंबर मयणा को खच्चर पर बिठाकर उज्जैन के राजमार्गो से गुजर रहे है । मयणा का भावि अंधकारमय है । राजाशाही भोग–विलास के स्वप्न बिखर गए हैं । दुःखपूर्ण स्थिति होने के बावजूद कर्मसिद्धांत और पितृ–वचन का पालन का पूर्ण संतोष–आनंद है । इसके विपरीत उंबर को लम्बे समय के बाद बहुत मेहनत करने पर कन्या की प्राप्ति की अपेक्षा पूरी हुई है । कन्या भी देवी जैसी सुंदर और सुशील है । अपेक्षा से कई गुना लाभ मिला है । इस अवसर पर आनंद की अवधि ही नहीं रहनी चाहिए, लेकिन उंबर गमगीन है । मन में खिन्नता है । उनके अंतर में यह

बात स्थिर है कि **पचाने की शक्ति से अधिक लेने से कौन सुखी हो सकता है ।** उंबर सोंचता है कि मेरी ऐसी खराब परिस्थिति में यह सब अनुचित हो रहा है । भले ही घोषणा करने का बड़ा लाभ मिला है, पर उचित नहीं है, खुश होने जैसा नहीं है । उदास चेहरे से राजमार्गो से गुजरता हुआ नगर के बाहर अपने स्थान पर आते हैं । योग्यता से अधिक मिल जाए तो आराधक आत्मा कभी खुश नहीं होता, यह संदेश उंबर दे रहे है ।

दूसरों के नुकसान से होनेवाला फायदा कभी इच्छनीय नहीं है ।

धर्म–प्राप्ति की पूर्व भूमिका कैसी होती है? यह उंबर के जीवन से मिल सकती है । हमारी स्थिति ऐसी है कि लाभ हुआ और आनंद होता है और लाभ भी पौद्‌गलिक लाभ । उंबर की स्थिति अलग ही है । वो पौद्‌गलिक लाभ की अपेक्षा से ही घूम रहे है । ज्यादा मिला है तो भी उदास है । स्थान पर आते–आते शाम हो चुकी है । डेरे–तंबू में उंबर और मयणा ही है ।

उंबर मनोमंथन कर रहा है । जो भी घटित हुआ वो अनुचित लग रहा है । भले ही मयणा खुद आई है, प्रसन्न है, पर उंबर के हृदय में टीस है । अपने कोढ़ से मयणा का रुप–लावण्य–सौंदर्य नष्ट हो जाएगा । **दूसरों के नुकशान से अपना लाभ ? यह बात उंबर का हृदय नहीं स्वीकारता ।** लम्बे समय तक का मौन तोडकर उंबर मयणा से कहेता है, ''देवी ! अभी भी कुछ बिगडा नहीं है । यहाँ से जाना ही श्रेयस्कर है । मेरा रोग आपका जीवन–देह–आरोग्य सब कुछ खतम कर देगा । इसलिए यहाँ से जाकर उचित स्थान ढूंढ लेना । यहाँ उंबर की मनोदशा विचारणीय है । कितनी मेहनत से कन्या मिली है, इसे भेजने क बाद दूसरी मिलेगी या नहीं ? यह प्रश्न तो खड़ा ही है । 'यह तो मेरे मना करने पर भी सामने से मिली है, तो भले इसका नसीब' ऐसा विचार उंबर को नहीं आता । अंतर में मात्र परहित चिंता ही बसी है । **अपना बड़ा लाभ छोड़कर भी दूसरों का नुकसान रोकने के लिए तैयार है । यह भूमिका मंद मिथ्यात्व की है । धर्मप्राप्ति के पूर्व ही हृदय का कोमल होना आत्मविकास की भूमिका है ।**

उंबर की बात सुनकर मयणा की आंखों से सावन–भादों बरसने लगते है । कहीं नहीं रोई मयणा यहॉ रो–रोकर मना करती है । 'पंच की साक्षी में पिता की आज्ञानुसार एक बार जिसे पति के रुप में स्वीकार किया वहीं जीवनपर्यंत रहेंगे ।' मयणा की ऐसी दृढता होने पर भी उंबर अलग–अलग तरीके से मयणा को समझाने का प्रयत्न करता हैं । मयणा अपनी बात छोडने के लिए राजी नहीं है । वो कोढी पति को आजीवन स्वीकारने के लिए तैयार है । पूरी रात उंबर का चित्त व्यथित रहा । बातों बातों में सुबह हो गई । सूर्यदेव को भी जैसे ख्याल आ गया कि दोनो जन नहीं, सज्जन है, मानव नहीं, महामानव है । **अपना बडा लाभ गवाँकर परचिंता मग्न यह महापुरुष है, और जीवन का बलिदान देने वाली यह शीलवती नारी है ।**

उंबर पूरी रात केवल मयणा को नहीं, हमें भी समझाते हैं कि, **दूसरो के नुकसान के बदले कभी लाभ नहीं उठाना चाहिए । निकट भविष्यमें निश्चित ही सच्चा धर्म मिलेगा ।**

गंभीर बनिए, धीर बनिए ।

उंबर के भीतर में सहज रहे गुणों का विचार चल रहा है । उंबर धर्मी नहीं है, धर्म क्या है ? उसे पता नहीं है, लेकिन आंतरिक परिणति की शुद्धि सहज भाव से है । उपजाऊ जमीन में बीज गिरता है, तो फलता–फूलता ही है । वैसे ही आंतरशुद्धि वाले जीव को धर्म मिलता है तो फलता ही है । उंबर को भले धर्म नहीं मिला पर भूमिका–शुद्धि जोरदार थी । (हमें धर्म मिला है, पर परिणति शुद्ध नहीं हे । महान् कौन ? हम या उंबर ? यह हमे ही निश्चित करना है ।

पूरी रात वार्तालाप चला। मयणा को होनेवाला नुकसान उंबर को मंजूर नहीं था और मयणा उंबर को छोडने के लिए राजी नहीं थी । इसी जद्दोजहद में रात पूरी हो गई पर यहीं से शुरु हुआ उंबर और मयणा का जीवन । **धर्म मिलने से पहले ही गंभीरता गुण आना है और उच्छृंखल वृत्ति जाती है ।** उंबर की गंभीरता गजब की है । अब मयणा जानेवाली नहीं है यह

निर्णय हो गया है, तब भी उंबर अपनी सच्ची भी बडाई नहीं करता है, कि मयणा ! अभी में रोगी हूँ तो क्या हुआ, वैसे तो राजपुत्र हूँ । तुं किसी हाली–मवाली के के साथ नहीं आई है । इतना भी कहा होता तो मयणा को कितनी शांति मिलती ! पर उंबर इस विषय में मौन है । **उंबर समझते है कि ऐसी बातों में केवल स्वप्रशंसा ही है ।** उंबर–श्रीपाल ने जीवन में कहीं भी अपनी जात नहीं खोली है । सिर्फ अपना परिचय ही दिया होता तो भी कई जगह समाधान या सरलता हो जाती । कोढ रोगी थे तब, स्वयंवर में या चांडाल होने का कलंक लगा तब भी कहीं भी श्रीपाल ने अपना परिचय नहीं दिया । सभी प्रसंगो में महत्त्वपूर्ण प्रसंग यह है । मयणा अपना पूरा जीवन होम करने के लिए तैयार हो गई है, तो भी श्रीपाल ने परिचय नहीं दिया है । वर्तमानकाल में जो स्थिति है उससे न तो आगे–पीछे हुआ और नहीं कुछ बोला । यह उच्च कोटि की गंभीरता है । तब मयणा ने भी पूछा नहीं कि आप कौन है । रोग मिटने के बाद भी कुछ पूछा नहीं । गुण में गुण मिल जाते है । **मयणा की यह धीरता है, धीरता की पराकाष्ठा है जो धर्मी का लक्षण है ।** धर्मी बनने का यह महत्त्वपूर्ण गुण है । उंबर हमे कहते है गंभीर बनो । **सत्य ही होने पर भी सब बोला नहीं जाता ।** धर्म आने के पहले ही सहज गंभीरता अंतर में प्रकट होती है ।

सती की बात पर न तर्क, न दलील ।

सुबह होते ही मयणा ने युगादि देव को जुहारने की बात कही, उंबर तैयार हो गए । उसके साथ चले । कोई तर्क, दलील या अन्य बात नहीं । पूरी रात मयणा के रुप लावण्य की चिंता करने वाले उंबर ने मयणा के परिचित राजवैद्य के पास जाकर उपचार की बात भी नहीं की । मयणा की सुरक्षा के लिए भी रोग का उपचार अब जरुरी हो गया था । मयणा के पास गहने हैं, राजवैद्य का परिचय भी है तो भी उंबर कुछ नहीं बोलते है । मयणा के साथ जिनालय जाते है । एक स्त्री की बात मौनपूर्वक स्वीकार लेते है ।

रात के वार्तालाप द्वारा उंबर ने **इस राजकन्या में देहदर्शन नहीं**

देवीदर्शन किया है, सतीत्वदर्शन किया है । वास्तविक दृष्टि से पूरी रात का वार्तालाप गौण है । इस वार्तालाप के माध्यम से एक–दूसरे के आत्मदल की ही पहचान हुई है । **उंबर ने मयणा में सतीत्व–दर्शन किया और मयणा ने उंबर में सत्वदर्शन किया है ।** अपने बडे लाभ खोकर भी दूसरों का हित देखनेवाला यह सत्वशाली पुरुष है , महान पुरुष है । प्रथम रात्रि में दोनों ने एक–दूसरे का देहदर्शन नही, आत्मदर्शन किया है ।

उंबर उंबर है, भले कोढी है, वो कुछ नहीं करते, उनका गुणसमृद्ध आत्मदल ही ऐसी प्रवृति करवाता है । उनकी हर प्रवृत्ति पर विचारधारा या हर निर्णय के पीछे कोई न कोई रहस्य छिपा है । मयणा के जिनालयगमन के कथन से उंबर तैयार हो जाता हैं । वैद्यराज के यहाँ जाने की या अन्य कोई बात नहीं करते है । यह व्यावहारिक दृष्टि से थोडा अनुचित लगे पर उंबर कहते हैं कि सतीत्व की परीक्षा होने के बाद कोई तर्क नहीं, एक मात्र सतीत्व के कारण वचन मानने वाले होने पर भी उंबर पत्नि–दीवाने नहीं बने । वो संपूर्ण सावधान हैं । जब श्रीपाल परदेस कमाने जाने की बात करते हैं, मयणा साथ जाने का प्रस्ताव रखती है पर श्रीपाल सजाग है । परदेशगमन के समय में श्रीपाल मयणा को स्पष्ट मना करते है। श्रीपाल कितने व्यवहारदक्ष थे । माँ अकेली है, उम्र हो गई है, सेवा के लिए मयणा को छोड जाते है । यहां उंबर कहते है 'जहाँ सतीत्व–वहाँ सद्‌भाव , कोई तर्क–दलील नहीं, परंतु **स्त्री के पीछे पागल भी नहीं बनना ।**

जहाँ श्रद्धा वहाँ सर्वस्व, समर्पण वहाँ चमत्कार ।

मयणा के कहने से उंबर प्रभु के दर्शन करने जाते हैं । उंबर ने जीवन में पहली बार हीं प्रभु के दर्शन किए है । अरिहंत प्रभु कैसे है । उनके गुण कैसे है ? उनकी स्तुति कैसे की जाती है ? कुछ पता नही है, फिर भी चमत्कार होता है । प्रभु के कंठ में रही हुई माला और हाथ में रहा बीजोरा उछलकर उंबर के पास आता है । ऊपर की दृष्टि से लगता है मयणा की श्रद्धा, अग्निपरीक्षा फली, मगर थोडी गहराई में जाएँ। दोनो चीजें उंबर के

पास क्यों आई । सुमधुर कंठ से भाववाही स्तुतियों से स्तवना करती मयणा की अपेक्षा उंबर का प्रभु के प्रति सद्भाव–समर्पण भाव विशेष था । मयणा ने तो शास्त्राभ्यास किया है। प्रभु का स्वरुप जानती है, और स्तवना करती है। उंबर को कुछ भी पता नहीं है। पहली बार देखा है, तो भाव कहाँ से आए ? प्रभु कौन है। उनके गुण का लेश भी परिचय नहीं है । तों भी मयणा के माध्यम सें प्रभु को पहचानकर तन्मय बन गए है । मयणा सती स्त्री है । दैवी शक्ति है, महान नारी है, इससे विशेष शक्ति कोई नहीं हो सकती। निशाचर्चा के बाद उंबर के अंतर की यह आस्था बनी है। **सती स्त्री हर जगह नहीं झुकती, ऐसी सती स्त्री जिसे नमस्कार करती हो, झुकती हो, वह निश्चित दिव्य तत्त्व होना चाहिए।** ओघ संज्ञा (सामान्य) से प्रभु की दिव्यता दिखती हैं। अहोभाव पैदा हुआ है, ''अहो ! यह कौन हैं, सती स्त्री भी इन्हें नमस्कार करती हैं। बस इसी ओघ संज्ञा के अहोभाव ने उंबर से आत्म–समर्पण करवाया हैं। हाथ जोडकर खडे है, स्तुति के लिए शब्दो के साथिये नहीं है, है तो बस अहोभाव, आत्मभाव का समर्पण। मयणा स्तुतियो की सरगम बहाती है, उंबर तो दो हाथ जोडकर मूक खडा है। शरीर खडा है, आत्मा प्रभुमय है।

जगत का नियम है, **जहाँ अहोभाव होता है, वहाँ जगत भूला जाता है ।** उंबर जगत भूलकर जगत्पति में एकाकार बने हैं । पहली बार दर्शन किए और प्रभुमय बन गए । तादात्म्य भाव से प्रभु–दर्शन कर रहे हैं । **भक्तियोग का नियम है, भक्त भगवानमय बनता है, तो भगवान को भक्त में अवतरण लेना ही पडता है ।** भक्त के आगे भगवान की यह लाचारी है । इससे एक अपेक्षा से जगह जगह पर भगवान से भक्त की ताकत अधिक बताई है । पर भक्त बनना कठिन है । तिलक लगाकर भक्त बन दिखना जितना आसान है, वास्तविक भक्त बनना उतना ही कठिन है । भक्त बनने के लिए सर्वस्व समर्पण भाव चाहिए । मेरा कुछ भी नहीं है और मैं प्रभु का हूँ, सर्वस्व समर्पण भाव की इस भूमिका में उंबर आता है । भूमिका जोरदार है तो सामने से जवाब भी सचोट मिलता है । पुष्पमाला और बीजोरा दोनो मंगल प्रतीक उंबर के पास आते हैं ।

हाँ, एक बात समझने जैसी है, उंबर का समर्पण स्वार्थ के लिए नहीं है । मेरा शुभ होगा, रोग जाएगा, ऐसी किसी भावना से तदाकार नहीं बना । निःस्वार्थ भाव का समर्पण है । **'दिव्यशक्ति है, बस ! झुक जाओ'** यह उंबर हमसे कह रहे हैं ।

उंबर का भयंकर पापोदय चल रहा है । इससे ही राज्य–परिवार–संपत्ति–वैभव–सत्ता–देह–नाम सब चल गया है, आरोग्य भी बराबर नहीं है । ऐसे पापोदय में भी उंबर का उपादान (योग्यता) यथावत् टिका है । **उंबर रोगादि से घिरे हैं पर उपादान की दृष्टि सें गुणों के भंडार हैं ।** आत्मा की योग्यता ही कितनी सुंदर परिणत हुई है । **उपादान की शुद्धि पुण्य से नहीं पर कर्म की लघुता–मंदता से आती है । धर्मप्राप्ति के लिए पुण्योदय से भी आत्म–शुद्धि अधिक जरुरी है ।** शास्त्रकारो की यह बात उंबर के जीवन से हमें समझ आती है । पुण्योदय धर्म के संयोग दे सकता है, पर सफलता आत्मशुद्धि से ही शक्य हैं ।

प्रभुदर्शन प्रणिधानपूर्वक

मयणा–उंबर भगवान के समक्ष हाथ जोडकर खडे है । मेरा क्या होगा ? इसकी लेशमात्र चिंता मयणा नहीं करती । हृदय में शासन–निंदा का अपार दुःख है । दुखते दिल से मयणा एकाग्र बनकर प्रभु की भाववाही स्तुति बोल रही है । उंबर प्रभुमय बन गए है, उस समय प्रभु के कण्ठ से माला और हथेली से बीजोरा उछलता है ।

मयणा को दोनों चीजें दिखती है । उंबर प्रभु में रत हो गए है, प्रभु के सिवाय कुछ दिखाई नहीं दे रहा है । यह प्रणिधान की भूमिका है । उंबर को प्रभु का परिचय नहीं है, पर प्रणिधान हो गया है । **प्रभुदर्शन की मस्ती में व्यवधान बाधक नहीं बनते है ।** यह कौन सी भूमिका होगी ? प्रभुदर्शन की, प्रभुमय बनने की । जब मयणा कहती है, ''स्वामीनाथ ! ग्रहण कर लीजीए, यह प्रभुकृपा है । यह शगुन है ।'' तब उंबर का ध्यान उस ओर जाता है । वह जल्दी से दोनों हाथों में उन दोनो शुभ संकेतों का स्वीकार कर लेता है ।

कैसी है भक्त की प्रणिधान सहित भक्ति ?

कैसी है भगवान की भक्त के प्रति करुणा ?

उंबर हमें प्रभु–दर्शन कैसे करना यह सीखा रहे हैं । **प्रभु–दर्शन करना ही हो तो प्रभुमय बनना पडता है । जगतपति के दर्शन के लिए जगत को भूलना पडता है ।** उंबर कहते हैं समझ पडें या नहीं पडे पर **निःस्वार्थभाव से समर्पण के साथ प्रणिधानपूर्वक प्रभुदर्शन करो,** जीवन में नया उजास होगा, जीवन प्रकाशमय बनेगा ।

दर्शन से पापनाश

मयणा–उंबर प्रभु–दर्शन करते है । उंबर तो पहली बार ही प्रभुदर्शन कर रहे है । दोनों का पापोदय चल रहा है, पर आई हुई स्थिति का प्रसन्न मुख से स्वीकार कर लिया है । ऐसी स्थिति में भी उंबर मयणा के वचन से दर्शन करने जाते हैं । **प्रभु–दर्शन का सबसे पहला प्रभाव हमारे पाप–नाश करना है ।** बाल–गोपाल प्रसिद्ध 'दर्शनं देव देवस्य' स्तुति में मोक्ष की बात आखरी है । पुण्य की बात भी अंतिम है, पाप–नाश की बात पहली है । पूर्व भवों में अपनी मन–वचन–काया की अशुभ प्रवृत्तियों से जो पाप बांधे है, जो अशुभ संस्कार लेकर आए है, उन्हें दूर करने की ताकत प्रभु–दर्शन में है। 'दर्शनं देव देवस्य' श्लोक में प्रतिमा के दर्शन नहीं, देवाधिदेव के दर्शन करने से पाप–नाश होता है, यह बात स्पष्ट बताई है । प्रतिमा प्रभु तक पहुँचने का माध्यम है । उंबर को प्रतिमा में दिव्यतत्त्व के दर्शन होते है । प्रभु–तत्त्व के दर्शन होते है, इससे एकाकार बन जाते हैं । अपना और जगत का भान भूलकर परमतत्त्व के दर्शन में लीन बन गए हैं । हम भी प्रभु–दर्शन करते है, कुल परंपरा से दर्शन करने के संस्कार है, इसमें समझ मिल जाए तो हमारी भी प्रवृत्ति बदल जाती है । प्रतिमा नहीं पर हाजराहजूर परमात्मा–दिव्य तत्त्व बिराजमान है, ऐसा भाव आए तो ही तू ही–तू ही भाव प्रगट होता है । यहाँ उंबर संदेश दे रहे हैं, ''प्रभु के एक ही बार के दर्शन पापनाश कर सकते है, बशर्ते प्रतिमा में प्रभु के दर्शन करो ।''

उपादान (योग्यता) शुद्ध करो उत्थान होगा ही ।

जिनालय में दर्शन कर मयणा के साथ गुरुदेव के पास जाते हैं । धर्म क्रिया की जानकारी नहीं होने से मयणा की देखादेखी यंत्रवत् गुरुवंदन करते हैं। गुरुदेव की नजर उंबर की तरफ है, मयणा से तो वे औपचारिक ही पूछते हैं कि यह नररत्न कौन है ? उन्होंने तो अपने आत्मज्ञान से उंबर की आत्मा को पहचान लिया है । **आत्मा के सौदागर शुद्ध उपादानवाली आत्मा को क्यों नहीं पहचानेंगे** ? उंबर तो मौन है, मानो साधक ही न हो ! मयणा ने सारी बात की, शासन की निंदा की चिंता व्यक्त की, परंतु गुरुदेव क्या करें यदि समय नहीं पका हो तो, योग्य उपादान वाली व्यक्ति नहीं हो तो ? सूरिदेव का ध्यान मयणा की स्थिति और उसकी गंभीर बात से ज्यादा उंबर की योग्यता पर है । मुनिसुंदरसूरि म. सामुद्रिक शास्त्र और भावि भावों के ज्ञाता है, इससे तो मयणा के बोलने से पहले उंबर को 'नररत्न' कहा । गाँव–गाँव और देश–देश घूमनेवाले उंबर को कोई पहचान नहीं सका, आज एक ने तो पहचान लिया । **रत्न जौहरी के हाथ में जाता है तो ही किंमत होती है, बाकी तो कौन आंक सकता है ? रत्न को जौहरी नहीं मिले तब तक रत्न अपना प्रकाश नहीं छिपाता, चमक तो ऐसी ही होती है** । उंबर को गुरुदेव नहीं मिले तब तक कहीं भी भटकते रहे, पर गुणप्रकाश कहीं छिपा नहीं, झिलमिलाते ही रहे । उंबर कहते है **आत्मगुणों को झिलमिलाते रखो, उपादान शुद्ध करो, कहीं न कहीं तो जौहरी मिल ही जाएगा, धीरज रखिए ।** पूज्य आचार्य श्री मुनिसुंदरसूरि म. को योग्य समय और उपादान की शुद्धता दिखाई देती है, इससे वे नररत्न को सिद्धचक्र के अनुष्ठान का निर्देश करते है।

जो भी धर्मक्रिया करनी है, वह योग्य रीति से सीखो ।

पू.आ.श्री मुनिसुंदरसूरि म.ने पूर्व में से उद्धृत कर उंबर–मयणा को सिद्धचक्र का विधान दिया । अश्विन शुक्ला सप्तमी से विधान–आराधना प्रारम्भ करना है । जिसमें अभी देर है । मयणा को विधि–विधान का

गहराई से अभ्यास है । उंबर विधि–विधान से अनजान है । उंबर ऐसा नहीं सोचते कि पूजा–विधान करते मयणा जैसा कहेगी, कर लेंगे । **जो भी धर्मक्रिया–आराधना–पूजा–पूजन करना है वो पू.गुरुदेव से समझने की मेहनत करते है।'' सिद्धान्त (थियरी) गुरु महाराज से सीख कर प्रयोग (प्रेक्टीकल) मयणा से सीखते हैं । क्रियात्मक धर्म में निपुणता प्राप्त करते है । तत्त्व को भावात्मक बनाते है । तत्त्व–रहस्य का ख्याल नहीं हो तो आराधना में आनंद कैसे आए** ? उंबर को मयणा सें सीखने में लघुता, शर्म महसूस नहीं होती । वहाँ तो है केवल लगन । जो भी अनुष्ठान करना है उसकी समझ होनी चाहिए । हाँ, उंबर यह भी नहीं सोंचते है कि विधि करते जाऊँगा और समझते जाऊँगा । यदि ऐसा किया जाए तो अनुष्ठान क्रम के अनुबंध टूटते जाते हैं । विधि का क्रम–विचलन होने से अध्यवसाय शुद्धि जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं हो पाती है । ऐसी समझ किसी ने नहीं दी । उंबर की स्वयं–भू चेतना आत्मदल ही यथोचित प्रवृत्ति करा रहा है । उंबर हमसे कह रहे है, ''जो भी अनुष्ठान–क्रिया करते हों उसके पहले ही उसके बारे में समझ लें तो अनुष्ठान ओर पूज्य–तत्त्व के प्रति अहोभाव–आदर होता है । चालू विधि में समझने की प्रवृत्ति तो विधि का अनादर, आशातना है । ऐसे में विधान कैसे फले ?

सिद्धचक्रजी कब फलते है ?

उंबर ने मयणा के साथ आसोज (कुंवार) शुक्ला सप्तमी से सिद्धचक्र की आराधना शुरु की । आराधना में अदम्य उत्साह है । पहला दिन है, पहली बार ही आयंबिल का पच्चक्खाण किया है । प्रभु की स्नात्रपूजा कर सिद्धचक्रजी का अभिषेक किया, शांतिकलश किया, फिर उंबर ने स्नात्रजल शरीर पर लगाया और आश्चर्य ! अंतर में अगम्य प्रसन्नता पैदा हुई । वर्षो से परेशान करनेवाला कोढ रोग और उसके निमित्त शरीर में होनेवाली दाह–जलन शांत नहीं प्रशांत हो गई । क्षणमात्र में सब हो गया । प्रभुपूजा से दाह–उष्णता–जलन–वेदना सब त्रासजनक परिस्थितियाँ नौ–दो–ग्यारह हो गई।

उंबर को कुछ समझ नहीं आ रहा है । हाँ ! बाह्य स्वरुप यथावत् है, था वेसा ही कोढी है तो भी 'चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्युं' 'मनःप्रसन्नतामेति' इन पंक्तियों की सार्थकता का अनुभव करता है । यह उसकी अपनी अनुभूति है, मयणा को तो उंबर कहते हैं तब पता चलता है । **पहले दिन ही सिद्धचक्रजी फले इसमें काल या चौथे आरे का प्रभाव नहीं है । प्रभाव तो भक्त और भगवान के संबंध का है, अंतर की भक्ति का है ।** आज भी अनेक पुण्यात्माएँ सिद्धचक्रजीकी फलश्रुति का अनुभव कर रहे है । आरा चौथा हो या पाँचवा, सतयुग हो या कलियुग हो, सिद्धचक्र तो वही के वही है और उनका प्रभाव भी वही का वही है । अंतर की श्रद्धा, अदम्य उत्साह, सर्वस्व भोग से भक्ति, उपादान शुद्धि–अंतर शुद्धि, विधि मर्यादा का पालन, अहोभाव ये सब तत्व होंगे तो सिद्धचक्रजी अवश्य फलेंगे' उंबर अपनी अनुभूति बताते है ।

टिप्पणी : आजकल पूजनों में क्रियाकारकों का वर्णनात्मक समझ(लेक्चरबाजी) शुरु हो गई है जो बिल्कुल शास्त्रमर्यादा रहित है । पूजन के एक दिन पहले सुबह / दोपहर / शाम को समझाने का कार्यक्रम रखा जाए तो फिर भी उचित है । बाकी तो चालू पूजन में भाषण देने से (१) विधि–मर्यादा का भंग होता है । मंत्राक्षरो के क्रम में विलंब होता है । (२) दीक्षादि प्रसंगों में भगवान के समक्ष आचार्य भगवंत भी उपदेश नहीं देते तो एक सामान्य क्रियाकारक को भगवान के सामने भाषण देने का अधिकार किसने दिया ? भगवान की आमन्या टूट रही है । (३) समझ अच्छी दे तो क्रियाकारक अच्छा, भले फिर मंत्रोच्चारण अशुद्ध हों, विधि में गडबड हो (क्योंकि इस बात में सब अनजान है) शुद्ध–सात्त्विक और उच्चार शुद्धवाले क्रियाकारको की किंमत कम हो रही है । इस विषय में आराधक जागृत होंगे तो विधिशुद्धि, उच्चारशुद्धि और मर्यादा शुद्धि का पुनः जागरण होगा । विधानो की अनुभूति का प्रारम्भ होगा ।

पर सें नहीं, स्व से पहचाने जाओ ।

श्री सिद्धचक्र के प्रभाव से उंबर का कोढ रोग शमन हो गया । औषध के लिए गइ माँ कमलप्रभा भी लौट आई । मयणा की माता रुपसुंदरी जिनालय में मिली । अपने स्थान पर ले जाकर कमलप्रभा ने पुत्र का परिचय दिया । रुपसुंदरी खुश हो गई । प्रजापाल राजा को समाचार भेजे । प्रजापाल राजा ने श्रीपाल–मयणा का राजमहल में स्वागत किया ।

एक दिन शाम को श्रीपाल घुडसवारी कर रहा था । देवकुमार जैसे रुपवान युवान को देखकर किसी प्रजाजन ने दूसरे से पूछा, ''यह कौन है ?'' उसने जवाब दिया, ''अपने राजा का जमाई है ।'' धीरे से बोले गये यह शब्दा श्रीपाल के कानो से जा टकराएँ । शब्दों से श्रीपाल चौंक गए । यह क्या ? मैं ससुरजी यानि दूसरे के माध्यम से पहचाना जाऊँ ? मेरी स्वतंत्र पहचान नहीं है ? मैं मेरे अपने भावों से क्यों पहचाना जाऊँ ? विचारों मे चडे और गहरे उतर गए । अपनी पहचान बनाने का दृढ निश्चय कर लिया । घर गए, चैन नहीं पड रहा है । माँ बेटे को उदास देखकर चिंतित होकर पूछती है, ''बेटा ! क्या हुआ ? किसी ने कुछ कहा ? अपमान किया ? कोई रोग सता रहा है ?'' वात्सल्य भाव से पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते उदासमुखी श्रीपाल ने कहा, 'कुछ नहीं ।'' बहुत पूछने पर कहा, ''मैं राजपुत्र हूँ, तो भी मेरे नाम से, गुण से नहीं, ससुरजी के नाम से पहचाना जाता हूँ , यह आज पता चला है । 'यह राजा का जमाई है' इन शब्दोंने मुझे हिला दिया है । अब मैं अपने नाम से पहचाना जाऊँगा । अपना राज्य पाकर 'अपने साम्राज्य का स्वामी हूं' इस तरह पहचाना जाऊँ तभी शांति होगी ।

श्रीपाल पहली बार ससुरजी के नाम से पहचान सुनकर जाग गए । अपना राज्य पाने का दृढ संकल्प कर लिया । श्रीपाल हमें संदेश दे रहे है, पर से नहीं स्व से पहचाने जाओ, अभी हम देह के नाम से पहचाने जा रहे हैं । **जब तक आत्म–साम्राज्य पाने का दृढ संकल्प नहीं करोंगे, तब तक कर्मसत्ता स्वसाम्राज्य याद भी नही आने देगी ।**

श्रीपाल कहते है, ''जाग जाओ और दृढ संकल्प करो ।''

माता के प्रति आदर भाव रखो, सेवा करो ।

श्रीपाल को राज्य पाना है, इसके लिए सैन्य चाहिए, सैन्य के लिए संपत्ति चाहिए । बाहुबल से संपत्ति पाने के लिए श्रीपाल परदेशगमन की तैयारी करते है । मयणा भी साथ जाने के लिए उत्सुक है । श्रीपाल–मयणा के हर वचन का पहले से ही आदर करते आ रहे हैं । प्रथम प्रभात में प्रभु–

दर्शन के प्रसंग से लेकर आज तक सती के वचन का उत्थापन नहीं किया है । आज साथ ले जाने के लिए मना कर रहे हैं । वो कहते है कि, ''माता की सेवा के लिए यहीं रह जाईए ।'' माँ को अकेला छोडने के लिए श्रीपाल का मन राजी नहीं है । बाल्यावस्था में बचाने के लिए राज्य छोडा । बहुत कष्ट सहकर बडा किया, उस माँ को अकेला कैसे छोडा जाए ? **माता के प्रति अहोभाव है, अंतर में बहुमान है, माँ का अनन्य उपकार सतत नजर में है। इसलिए मयणा को साथ नहीं ले जाते हुए सेवा की बात करते हैं** । मयणा के प्रतिबंधक बनने का प्रश्न मुख्य होता तो बब्बर कुल से मदनसेना और रत्नद्वीप से मदनमंजूषा को साथ क्यों ले जाते ? सिद्धचक्र के प्रभाव से प्रतिबंधकता का प्रश्न श्रीपाल को नहीं है । माँ की सेवा–भक्ति श्रीपाल के अंतर में बसी है । आराधक आत्मा का माता के प्रति बहुमान आदरभाव होना चाहिए । श्रीपाल इस प्रसंग से सीख दे रहे है ।

दूसरों की मेहनत का लिया नहीं जाता

मयणा को माँ की सेवा में रखकर श्रीपाल अकेले ही हाथ में मात्र तलवार लेकर कमाने के लिए परदेश जाने के लिए निकलते हैं । पहली रात को ही गिरिकंदरा मे साधक मिलता है । वो चंपकवृक्ष के नीचे साधना कर रहा है । बहुत समय हो गया, पर विद्या सिद्ध नहीं हो रही है । श्रीपाल के सिद्धचक्र–प्रभाव से क्षणमात्र में साधना सिद्ध हो गई । वहाँ से दोनों गिरिनितंब के भाग में गए जहाँ उस साधक के गुरु रस सिद्ध कर रहे थे, पर सफल नहीं हो पा रहे थे ।

श्रीपाल की दृष्टि के प्रभाव से तुरंत ही रससिद्धि हो गई । साधक श्रीपाल को उपकारी के तौर पर सामने से स्वर्ण देने के लिए तैयार हो गया । रस–सिद्धि से श्रीपाल जितनी चाहे उतनी संपत्ति प्राप्त कर सकते हैं, अपना राज्य भी प्राप्त कर सकते हैं । वो जिस काम के लिए निकले हैं, वो पहली रात में ही पूर्ण हो जाता है । लक्ष्मी सामने से तिलक करने के लिए तैयार है, पर श्रीपाल इनकार करते हैं । साधक आग्रह करता हैं पर श्रीपाल लेने के लिए

राजी नहीं हैं । ऐसा क्यों ? श्रीपाल कहते है कि जिसकी मेहनत का है उसका ही गिना जाता है, दूसरों की मेहनत का लिया नहीं जाता ।

श्रीपाल–मयणा को भी छोडने के लिए तैयार थे, यहाँ स्वर्ण भी छोड रहे है । हमने किसी का काम किया हो तो उससे अपेक्षाएँ कितनी ? श्रीपाल निःस्पृही हैं, निःस्वार्थ है । तमाम सोना छोड दिया, इससे उनका निर्मोही भाव प्रकट होता है । आराधक पुण्यात्मा निर्मोही होता है, अन्य की मेहनत के फल में अपेक्षा नहीं रखता ।

कौन सी शक्ति आगे ? देव की या मनुष्य की ?

दैवी शक्ति ने धवल सेठ के जहाजों को अटका दिया है । शिकोतरी देवी बत्तीस लक्षणवाले पुरुष की बलि चाहती है । दैवी ताकत को हटाने का कोई अन्य उपाय नहीं है । श्रीपाल मुख्य जहाज के स्तम्भ पर चढकर सिद्धचक्र का ध्यान धरकर एक हुंकार करता है और शिकोतरी देवी की शक्ति पलायन हो जाती है । सामान्यतः यह कहा जाता है कि देव–देवी में शक्ति अधिक होती है, पर **मनुष्य निर्मल और सात्त्विक हो और ध्यान में बैठा हो तो देव–देवी से भी बढ जाता है ।** व्यक्ति में सत्त्व हो तो कहीं पीछे नहीं रहता है । **सात्त्विक मनुष्य के सामने दैवी शक्ति अतिहीन हे । इससे ही सत्वशाली के सामने देव हाथ जोडकर खडे रहते है ।** सत्त्व रखो, साधना में स्थिर बनो तो तुच्छ देव कहीं भाग जाएंगे । वहीं सात्त्विक देव सामने से आएंगे । श्रीपाल सिद्धचक्र का ध्यान करते है और अधिष्ठायक देव तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं । सत्त्व ओर साधना हो वहाँ देव खींचे चले आते हैं । देवों की **भवप्रत्ययिक शक्ति विशिष्ट होने के बावजूद मानव की गुण प्रत्ययिक शक्ति के आगे देव कमजोर पड जाते है ।**

सत्वशाली ओर संयमी आत्माओं के दर्शन–वंदन के लिए देव आते हैं । श्रीपाल कहते हैं कि सत्व रखो, इष्ट–दिव्य तत्व को समर्पित बनो तो देव भी हमेशा हाजिर होते है ।

दूसरों का मिल जाए तो भी लेना नहीं

श्रीपाल राजा बनने के अरमान लेकर कमाने निकले है । साधक रससिद्धि दे रहा था तो भी नहीं ली । भरुच में धवल सेठ के साथ यात्रा में जुडे है। जहाज बब्बर कुल पहुँचे । धवल शेठ कर नहीं चुकाते इसलिए वहाँ के महाकाल राजा ने युद्ध कर धवल को बंदी बना लिया और पेड पर उल्टा लटका दिया है । धवल की संपत्ति जब्त कर राजा नगर में जा रहा है । धवल ने आधी संपत्ति श्रीपाल को देने की बात कर छुडाने की विनंती की ।

श्रीपाल महाकाल राजा के पीछे जाकर उसे ललकारते हैं, दोनों में युद्ध होता है । एक और अकेले श्रीपाल है, दूसरी ओर राजा और पूरा सैन्य है पर थोडी देर में महाकाल राजा हार जाता है । श्रीपाल उसे बांधकर समुद्र के तट पर धवल के सामने लाते है। धवल के जहाज छुडवाकर महाकाल राजा को उनका राज्य लौटा देते है ।

श्रीपाल को राजा बनने के अरमान है । राजनीति अनुसार श्रीपाल राजा बन सकते है। अपने बाहुबल से उन्होंने महाकाल राजा को हराया है, अगर वो चाहते तो राजनीति के अनुसार अपना राज्याभिषेक करवा सकते थे पर वो राज्य जीतने के बाद भी राज्य लौटा देते हैं । यहाँ श्रीपाल को विचार भी नहीं आता कि मैं राजा बन जाऊँ ।

यहाँ श्रीपाल पैगाम देते है कि **आराधक आत्मा दूसरों की संपत्ति को अपनी करने में कभी राजी नही होता ।** श्रीपाल को दूसरों का राज्य लेने में आनंद नहीं है, स्वसाम्राज्य की ही चाह है ।

श्रीपाल ने महाकाल राजा से कहा होता कि आपका सैन्य लेकर अजितसेन काका से युद्ध करना है तो महाकाल स्वयं भी युद्ध करने साथ आते । महाकाल श्रीपाल को उपकारी मानता है, पर श्रीपाल का संकल्प तो अपने सामर्थ्य से साम्राज्य प्राप्त करना था ।

महाकाल राजा अपनी पुत्री मदनसेना से विवाह की बात रखते है।

श्रीपाल कहते हैं, 'कुलादि जाने बिना पुत्री नहीं दी जाती ।' महाकाल कहता है, ''आचार से ही कुल का पता चल जाता है ।'' यहाँ भी श्रीपाल पहले तो विवाह का इनकार ही करते हैं । राजा आनंद के आवेग में ऐसे अज्ञात व्यक्ति को तो अपनी बेटी नहीं दे रहा है, यह तलाश करते है । यहाँ एक प्रश्न होना स्वाभाविक है कि श्रीपाल प्रजापाल के सैन्य से राज्य जीतना नहीं चाहते, महाकाल का राज्य मिल गया तो स्वीकार नहीं करते तो कोंकण प्रदेश की ठाणा नगरी के राजा वसुपाल जब अपना राज्य देकर राज्याभिषेक की बात करते है तो श्रीपाल क्यों स्वीकारते है ? इस राजा की पुत्री मदनमंजरी भी श्रीपाल का विवाह हुआ है तो ससुर का राज्य क्यों स्वीकार किया ।

उत्तर : श्रीपाल ने श्वसुर पक्ष के कारण राज्य नहीं स्वीकार पर वसुपाल राजा श्रीपाल के मामा हैं । इससे वसुपाल और श्रीपाल के बीच मामा–भांजे का रिश्ता है । धवल सेठ ने चांडाल का कलंक लगाया । श्रीपाल को पकडने जाते युद्ध हुआ । श्रीपाल का शौर्य देख वसुपाल ने परिचय पूछा तब श्रीपाल के कहने से जहाज में से दोनो स्त्रियों को बुलाया और परिचय जाना । रत्नद्वीप में मदनसेना और मदनमंजूषा ने चारण मुनि के पवित्र मुख से श्रीपाल का परिचय जाना था । उनके कहने से राजा को पता चला कि यह तो मेरी बहन का पुत्र है और आनंदित होता है ।

वसुपाल राजा के पुत्र नहीं है; राज्य किसे सौंपना ? यह प्रश्न है, इससे अपने भांजे का राज्याभिषेक कर श्रीपाल को राजा बनाते हैं ।

श्रीपाल यहाँ व्यावहारिक बात बताते हैं कि समर्थ व्यक्ति को ससुर से कुछ नहीं लेना चाहिए, दूसरे का भी नहीं लेना चाहिए, पर मामा जो दे वो सब कुछ लिया जा सकता है । भानजे को मामा से जितना मिले उतना कम है। इस व्यवहारिक बात बात को महत्त्व देकर मामा वसुपाल का राज्य स्वीकारा है ।

पुण्य पर पूरा भरोसा

धवल और श्रीपाल के जहाज रत्नद्वीप पहुँचे है । वहाँ जोरदार

व्यापार चल रहा है । श्रीपाल को जिनालय के द्वार बंध होने के समाचार मिलते है। श्रीपाल जिनालय दर्शन ओर कौतुक देखने जाने के लिए तैयार होते है । धवल इनकार करता है । श्रीपाल अपना व्यापार धवल को सोंपते है । ''पुराना माल बेचकर नया माल खरीद लेना ।'' ऐसा कहकर वहाँ से रवाना होते है ।

श्रीपाल जानते हैं कि धवल के हृदय में मेरे लिए इर्ष्या की आग सुलग रही है । धवल से मिले जहाज, राजपुत्री से विवाह, राजा की ओर से कन्यादान में मिले बडे जहाज–इनमें से धवल को कुछ भी अच्छा नहीं लगा । 'मुझसे आगे निकल गया, इसका सब ले लूँ' ऐसे विचार चलते रहते है । श्रीपाल की हाजरी में ग्राहको को खींच–खींच कर ले जाता है । श्रीपाल ने अपना व्यापार धवल को दिया तो धवल प्रसन्न हो गया । उसने सोचा माल सस्ते भाव से बेचा और महंगे भाव में खरीदा ऐसा कहूँगा, मुझे दोनो तरफ से कमाई होगी । श्रीपाल धवल को समझता है तो भी मन में कोई शंका–कुशंका नहीं रखते हैं ।

एक कल्पना कीजिए, आपकी दुकान में जो माल मिलता है वही माल बाजु की दुकान में भी मिलता है । बाजुवाला आपके यहाँ आनेवाले ग्राहकों को पकड पकड कर ले जाता है, भाव तोडकर आकर्षित करता है । आपकी उन्नति नहीं हो ऐसा ही सतत सोंचता है । ऐसी स्थिति में आपको २–३ दिन बाहर गाँव जाने का हो जाए तो दुकान की चाबी पडोसी को देकर ध्यान रखने के लिए कहेंगे ?

श्रीपाल को कर्म–सिद्धान्त, पुण्य–पाप के खेल समझ में आ गए है । श्रीपाल को पुण्य पर पूर्ण भरोसा है । पुण्य में होगा तो कोई ले जानेवाला नहीं । भाग्य में होगा तो मिलेगा ही । किसी पर शंका–अविश्वास करने से क्या होगा । **पुण्य नहीं हो या पिछले भवों के लेन–देन बाकी हो तो ही सामने वाली व्यक्ति को छिन लेने का खयाल आता है ।** श्रीपाल समझतें है कि पहले एक दिन सत्ता–संपत्ति सब था, पुण्य गया तो सब चला गया । पुण्य–प्रभाव

से पुनः मिला है । जब तक पुण्य है तब तक टिकेगा, शंका–कुशंका या आर्तध्यान करने से क्या मतलब । श्रीपाल कहते है, ''पुण्य पर भरोसा करो, पुण्य ही बलवान है, दूसरो पर अविश्वास या शंका मत करो ।''

भाग्य आजमाने के लिए सबको मौका दो ।

रत्नसंचया नगरी में जिनमंदिर के द्वार बंद हो चुके है। राजकुमारी के योग्य पुण्यवान व्यक्ति की दृष्टि से ही मंदिर के द्वार खुलेंगे, ऐसी देववाणी हो चुकी है । श्रीपाल रसाले के साथ इस कौतुक देखने जाते है । जिनालय के समीप पहुंचकर श्रीपाल सबसे कहते हैं सब अपना भाग्य अजमाओ । क्रमशः सबको जिनालय सन्मुख भेजते है । यूँ तो नगरजनो ने भाग्य आजमा कर देखा पर सब निष्फल हो गए, तो भी श्रीपाल साथ वाले सभी को भेजते हैं, किसी की दृष्टि से द्वार नहीं खुलते । आखिर में श्रीपाल की दृष्टि से ही खुलते हैं और कनककेतु राजा राजपुत्री मदनमंजूषा का विवाह श्रीपाल से करते है।

श्रीपाल के मन में उदात्त भावना है । कहीं भी स्वार्थ की भावना या सब मै ही ले लूँ की भावना नहीं है । जिसके भाग्य में होगा उसे मिलेगा, ऐसा श्रीपाल मानते हैं । जिसका भी भाग्योदय होगा उसमें श्रीपाल को आनंद है । न ईर्ष्या है, न व्यग्रता है । आराधक आत्मा कैसी होनी चाहिए, यह श्रीपाल की हर एक प्रवृत्ति में, हर प्रसंग में झलक रहा है। **श्रीपाल कहते है सबको आगे करो, सब आपको आगे करेंगे ।**

बाजार में कोई बडा व्यापारी बाहर से आया हो और केवल एक ही सौदा करके तुरंत निकल जानेवाला हो और सौदा करनेवाले को जबर्दस्त फायदा होगा यह स्पष्ट दिखता हों तो आप क्या करेंगे ? पहले सबको जाने देंगे या स्वयं जाएंगे ? अपनी और श्रीपाल की मनोदशा में कितना अंतर है ?

वैभव–संपत्ति में डूबना नहीं ।

श्रीपाल की बढती संपत्ति दो–दो राजकुमारीयों के साथ लग्न, दहेज में मिली अपार संपत्ति देखकर धवल को श्रीपाल से अत्यंत ईर्ष्या होती है ।

खाली हाथ आने वाला मुझसे कितना आगे निकल गया, यह विचार धवल को परेशान कर रहा है । दिमाग में एक ही फितूर चल रहा है, ''श्रीपाल का सब मेरा हो जाए और इज्जत भी नहीं जाए ।'' मानव प्रकृति कैसी है ? पाप करना है पर छिपकर, ताकि इज्जत नहीं जानी चाहिए । धवल को सज्जन मित्रों की सलाह जंचती नही है। दुर्जन मित्र उसे अकेले में रास्ता दिखाते है, कि श्रीपाल को समुद्र में धक्का देकर डूबा दो । धवल ने योजना बनाकर श्रीपाल को धक्का दे दिया । श्रीपाल को नीचे मृत्यु दिख रही है, पर हाय रे ! ओ बाप रे ! बचाओ ! मेरी पत्नियों का क्या होंगा ? संपत्ति का क्या होगा ? ऐसा कोई विचार नहीं आया । उनके मुख से सहज शब्द निकले ''णमो अरिहंताणं'' सोचिए ! सिद्धचक्रजी कैसे ओतप्रोत हुए होंगे । रक्त की बूंद बूंद में आत्मा के प्रदेश प्रदेश पर कैसे व्याप्त हुए होंगे । आज की भाषा में कहें तो प्रभु स्मरण के संस्कार सुषुप्त मन तक कैसे जाम हो गए है । श्रीपाल को धर्म मिले अभी सिर्फ ६–७ महिने हुए है, पर अरिहंत में कैसे एक–मेक हो गए है । सब खतम रहा है पर कहीं मन नहीं है । हमें तो जन्म से ही प्रभु मिले है, पर हृदय में प्रभु आए है या नहीं ? सही समय पर प्रभु याद आते है या नहीं ? हमारा मन कहाँ है, पैसे में या प्रभु मे ? विभु मे या वैभव में ? इसका पता तो आपत्तिकाल में ही चलता है । **जो संपत्ति वैभव छोड कर जानेवाले है, उनकी ममता निश्चित दुर्गति में ले जाने वाली है,** सिद्धचक्र के प्रभाव से यह बात श्रीपाल की समझ में आ गई है । इससे ही तो ऐसी स्थिति में भी मन अरिहंत–सिद्धचक्र में लगा है । यहाँ श्रीपाल कहते है कि जो रहनेवाला नहीं है, उसे भले ही खुद के पास रखे, पर उसमें मन नहीं रखना यह भी एक साधना–योग है । गृहस्थ अवस्था में अलिप्त रहने की कला श्रीपाल हमें सीखा रहे हैं ।

दुश्मन से भी मैत्री भाव

भृगुकच्छ (भरुच) में श्रीपाल ने धवल के जहाज दैवी पाश से छुडवाए फिर श्रीपाल धवल के साथ ही जहाज में देशाटन के लिए जाते है।

श्रीपाल की बढती संपत्ति देखकर धवल को ईर्ष्या होती है । ईर्ष्या उसके अंतर को जला देती हैं । जिसके जीवन में इर्ष्या, असूया, मत्सर का प्रवेश हो जाता है, उसकी कैसी स्थिति होती है ? यह समझने के लिए धवल के सामने नजर करनी चाहिए ।

नाम धवल है, पर अंतर माया–कपट की कालिमा से भरा है । श्रीपाल के साथ बाहर से पिता जैसा, मित्र जैसा व्यवहार रखता है, पर अंतर में तो सब छीन लेने की और श्रीपाल को मारने की वृत्ति है । श्रीपाल को मालूम होना होने के बावजूद धवल सें कभी नफरत नहीं की, कभी तिरस्कार नहीं किया, कभी दुश्मन नहीं माना । बाह्य व्यवहार तो निर्दोष ही किया । आंतरिक व्यवहार भी कलुषित नही किया । यह आराधक भाव का लक्षण है । आराधना अंतरस्पर्शी बनी हो तो आत्मा मैत्रीभाव से वासित होती है । कस्तूरी को खराब स्थान पर रखते हैं तो भी वो सुवास ही फैलाती है । ऐसे ही आराधक आत्मा दुश्मनों की मायाजाल में रहकर भी मैत्री सुवास खोता नहीं है । उपादान की शुद्धि की यह उच्चतम भूमिका है । **आराधक आत्मा समझती है कि मेरे हजारों दुश्मन होंगे तो भी वे मेरा मोक्षमार्ग नहीं रोक सकते, पर एक भी व्यक्ति के प्रति शत्रुता का भाव मुझे मोक्षमार्ग में एक कदम भी आगे नहीं बढने देगा ।**

धवल सब छीन लेना चाहता है, अजितसेन ने सब ले लिया है । दोनो जान से मारने के लिए तैयार हुए हैं तो श्रीपाल को दोनों के प्रति उपकारी भाव है । श्रीपाल सीख देते है कि दुश्मन, नुकसान करनेवाले, हैरान करनेवाले के प्रति मैत्री–प्रेम रखना ही धर्म है, एक भी जीव के प्रति दुश्मनी रखना अधर्म है ।

प्रभु मिले तो निर्भीक बनो ।

श्रीपाल स्वराज्य पाने के लिए अर्थोपार्जन के लिए निर्भीक बनकर निकले है । किसी भी प्रकार का डर उनके हृदय में नहीं है । है तो केवल स्वराज्य पाने का संकल्प, अदम्य उत्साह ।

भरुच में धवल के सैनिक आए या धवल पुनः राजा के सैनिक लेकर आया, कहीं भी डर नहीं है । शीकोतरी देवी के कथनानुसार बत्तीस लक्षणवाले नर की बलि देने वाली देवी को भगाने की बात हो तो भी डर नहीं है ।

महाकाल राजा से अकेले लडने के लिए भी श्रीपाल तैयार है । धवल ने श्रीपाल को समुद्र में धक्का दे दिया । नीचे मौत दिख रही है, सब छूट रहा है, जान भी जा रही है, तब भी श्रीपाल को भय नहीं है ।

कुबडे के रुप में दिख रहे श्रीपाल को स्वयंवर में आए । अनेक राजा और राजकुमारो से लडना है तो भी भय नहीं है ।

कैसी भी परिस्थिति आए तो भी निर्भय है । श्रीपाल समझते है कि मैं तो पामर हूँ । मेरे सर पर परमेश्वर है तो फिर चिंता कैसी । मेरे सर पर नाथ है तो अनाथ क्यो बनूँ । मेरा काम तो प्रभु को हृदय में रखकर समर्पित रहना है, बाकी सब प्रभु सिद्धचक्र सम्हाले ।

श्रीपाल कहते है कि जो भी प्रभु को कभी नहीं छोडता उसे प्रभु भी कभी नही छोडते । छोटे बालक को मेले में केवल माँ की अंगुली ही पकडे रखनी होती है, बाकी जवाबदारी माँ ले लेती है । माँ से तो फिर भी भूल हो सकती है, पर प्रभु तो जगत्माता है, कहीं भूल की बात ही नहीं है ।

जहाँ–जहाँ संकट आया वहाँ वहाँ श्रीपाल ने प्रभु को, सिद्धचक्र को याद किया और क्षणभर में तो संकट के बादल बिखर गए । श्रीपाल को जो मिला, उसमें वो अपना नही, सिद्धचक्र का प्रभाव मानतें है । जो मिला है उसमें अनासक्त भाव है, कहीं भी ममत्व नहीं है । इतनी संपत्ति–सत्ता होने के बाद भी सिद्धचक्र की आराधना परिवार सहित करते है। जीवन नवपदमय बन चुका है । इससे ही पुत्र को राज्य सोंपकर, राज्य कार्य से निवृत्त होकर सिद्धचक्र का ध्यान करते है, विस्तार से नवपद चिंतन करते हैं, अपनी आत्मा को ही अरिहंतादिक नवपद स्वरुपी देखते है, ध्यान की यह कैसी उच्चतम भूमिका है !

श्रीपाल के वैभव–संपत्ति ओर राजपाट की बातें सुनकर उस तरफ नजर जाती है, पर कभी श्रीपाल के अंतरगुण, गुणसंपत्ति, आत्मवैभव, आराधक भाव, उपकारवृत्ति, निर्दोषता, अनासक्त भाव, ध्यान, साधना की ओर नजर गई या नहीं ।

श्रीपाल हमें संदेश देते है कि....

- प्रभु मिले तो निर्भय बनो ।
- प्रभु के प्रति श्रद्धा रखो ।
- अनासक्त भाव बनाए रखो ।
- निवृत्त बनकर प्रभु में प्रवृत्त बनो ।
- आराधना भावपूर्ण और परिवार के साथ करो ।

श्रीपाल की तरह अंतरवैभव–अंतरगुणवैभव में रमणता करो ।

आराधना के साथ ध्यान

उंबर (श्रीपाल) सिद्धचक्र–नवपद की आराधना के साथ नवपद का ध्यान करते थे । जो आराधना करते हो उसमें सतत उपयोग–प्रणिधान रखना ध्यान ही है । किन्तु आराधना, प्रतिक्रमण, काउस्सग्ग, खमासमणा, माला आदि करने के बाद भी आरंभ–समारंभ का त्याग कर के तच्चित्त बना रहना, उसके स्वरुप चिंतन के माध्यम से पिंडस्थादि ध्यान योग में स्थिर होना है, इसकी वर्तमान समय में अत्यंत कमी दृष्टिगोचर हो रही है । श्रीपाल ४ ।। साल की आराधना दरम्यान और उसके बाद भी सतत ध्यान में ही रहते थे ।

२. क्या बनना है ? श्रीपाल, धवल या अजितसेन

श्रीपाल कथा में तीन महत्त्वपूर्ण पात्र है, श्रीपाल, धवल और अजितसेन । इन तीनों के विषय में विचार कर हम किस पात्र के भावों में जी रहे है, यह हमें ही निश्चित करना है ।

श्रीपाल : जन्मजात गुणवान है । उन्होंने कभी किसी को कष्ट, दुःख नहीं दिया । अपना सब चला गया पर मन में खेद, दुःख या दीनता नहीं है । वर्तमान परिस्थिति का स्वीकार है । अपने कारण किसी को दुःख मिले यह उनके लिए असहनीय है । दुनिया में कोई मुझे दुःख देता नहीं है, सब मेरे उपकारी है, ऐसा उनका मानना है इसलिए धवल और अजितसेन दोनो उपकारी लगते हैं । किसी के प्रति इर्ष्या, द्वेष आदि नहीं है । **जो जन्म से गुणवान है, वह दुश्मन को भी उपकारी मानता है । निःस्वार्थ भाव, सरलता, हर परिस्थिति का हँसते मुँह स्वीकार करना, ये गुण जिसमें है वो श्रीपाल की फ्रेम मे फीट हो सकता है ।**

अब बात है धवल और अजितसेन की...

दोनो पात्र दुर्जन है । श्रीपाल को जान से मारने और उनका सब छिन लेने का दुष्ट भाव दोनों मे है । आर्तध्यान से भी आगे बढ़कर जान से मारने का रौद्रध्यान दोनों ने किया है ।

धवल ने तीन बार जान से मारने की योजना बनाई ।

(१) समुद्र में धक्का दिया (२) चांडाल का कलंक चड़ाया (३) कटार लेकर मारने आया ।

धवल को श्रीपाल का सब छिन लेना है, पर श्रीपाल ने धवल पर बार–बार उपकार किया है, मौत के मुँह से बचाया है, दो बार संपत्ति बचाई है, तो भी धवल की दुर्जनवृत्ति नहीं जाती है । धवल यानि अपकार की पराकाष्ठा ।

अजितसेन ने भी श्रीपाल को दो बार जान से खत्म करने का प्रयास किया । श्रीपाल दो साल के थे तब उनके पिताजी की मृत्यु हो गई थी । सुबुद्धि मंत्री श्रीपाल का राज्याभिषेक कर राज्य–संचालन कर रहे है । इस समय में अजितसेन काका सेना–भेद कर राज्य हड़प लेते है । श्रीपाल को मारने का आदेश दिया है । सैनिको को मारने के लिए भेजा, पर पुण्य जाग्रत होने से बच जाते है ।

(१) श्रीपाल को बचपन में जान से मारने के लिए तैयार हुए । (२) राज्य मांगने पर अपने हाथों ही मारने के लिए अजितसेन तैयार हो गए। धवल ने तीन बार, अजितसेन राजा ने दो बार मारने का प्रयत्न किया । दोनों मे अधिक दुर्जनता किसमे है ? श्रीपाल कथा पढ़ने–सुननेवाले को धवल में ही अधिक दुर्जनता नजर आती है । अजितसेन का तो शुरु और अंत में मात्र दो बार आंशिक पात्र आता है । जरा गहराई से सोंचे तो धवल से भी खूंखार अजितसेन थे । धवल को ईर्ष्या हो ऐसी सहज स्थिति तो थी ही । अपने सामने खाली हाथ आए व्यक्ति को आसरा देने के बाद वो अपने से आगे निकल जाए तो सहज ईर्ष्या हो जाती है । कोई परिणत धर्मी पुण्यात्मा हो तो ईर्ष्या नहीं हो वरना थोड़ी बहुत ईर्ष्या तो होती ही है । **हमें भी दूसरों की तरक्की देखकर आनंद होता है या ईर्ष्या होती है ?** स्वयं सोंचे । धर्मी बनने के लिए ये भूमिकाएँ तलाशनी चाहिए ।

अजितसेन खुद राजा है, खुद का राज्य है । भाई की मृत्यु के बाद भतीजे को सम्हालना, तैयार करना, रक्षण करना उनका नैतिक–व्यवहारिक

कर्तव्य है, किन्तु उन्होंने सेना–भेद कर राज्य छिन लिया । श्रीपाल को मारने के लिए सैनिक भेजे । सक्षम होने पर श्रीपाल ने मधुर शब्दों मे राज्य की मांग की, तब भी राज्य नहीं लौटाया, बल्कि पुनः मारने के लिए तैयार हो गए।

धवल से अजितसेन अधिक दुर्जन है क्योंकि कर्तव्य भूलकर मारने के लिए तैयार हुए है। रक्षक ही भक्षक बन गए है। धवल को तो ईर्ष्या होने के निमित्त मिले, उसने ईर्ष्या की पर श्रीपाल का कुछ नहीं ले सका । श्रीपाल के जीवन में दुःख का मूलभूत कारण अजितसेन है । धवल जब–जब दुःख देने गया, तब–तब श्रीपाल को सुख–संपत्ति का और कन्याएँ मिलती है। श्रीपाल को आंच तक नहीं आई । धवल के द्वारा दिए जाने वाले दुःख के समय श्रीपाल धर्म की शरण लेते है, जिससे आबाद बच जाते है । अजितसेन ने जब राज्य लिया तब धर्म की शरण नहीं थी। श्रीपाल छोटे थे तब अजितसेन ने राज्य छिन लिया पर संतोष नहीं है । सगा भतीजा है पर पुनः जान से मारने के लिए तैयार हो गए, स्वयं ही युद्ध करने जाते है ।

दोनो में अधिक दुर्जन अजितसेन है, अब जरा सोंचिए –

जन्म से गुणवान हो, दुश्मन का भी भला करने की भावना हो, लूँ–लूँ की आकांक्षा नहीं हो तो समझना कि श्रीपाल की फ्रेम में हम फिट हो सकते हैं, पर यह तो संभव नहीं है, तो अब क्या बनना है ? धवल या अजितसेन।

अजितसेन अधिक खूंखार है । व्यवहार चुके है। सगे भतीजे का राज छिन लिया है, फिर भी एक सुंदर उपदेश–संदेश अजितसेन हमें देते है, **''आपका भूतकाल चाहे जितना भी खराब हो । जाग जाओगे तो बच जाओगे, तिर जाओगे । जब तक जीवित हो तब तक सुधरने का अवसर है।''**

श्रीपाल के साथ युद्ध में अजितसेन हारते हैं, सैनिक अजितसेन को बांधकर श्रीपाल के पास लाते है । श्रीपाल उनके बंधन खुलवाकर पैर में गिरते है, माफी मांगते है और उनको राज्य स्वीकारने का कहते है, और सिर्फ

अपना ही राज्य लेने की बात करते है ।

राजनीति के अनुसार जो युद्ध में जीते उसका राज्य । इस न्याय से अजितसेन का राज्य भी श्रीपाल को मिल गया है । बचपन सें जिसने परेशान किया है, राज्य भी ले लिया है, ऐसे दुश्मन का राज्य सहजता से मिल गया है तो भी श्रीपाल सामने से कहते है, 'काकाश्री ! आप मेरे उपकारी हैं । इतने सालो तक आपने मेरा राज्य सम्हाला, वरना कोई हड़प लेता ।'' **दुर्जन में भी गुण देखना यह आराधक भाव है ।** श्रीपाल का आत्मदल देखिए, पहचानिए और अपनी आत्मा के साथ तुलना कीजिए ।

आपकी जमीन या संपत्ति पड़ोसी ने छिन ली हो, केस चल रहा हो, अचानक आपकी और पड़ोसी दोनों की जमीन आपके नाम करवाने का कोर्ट से आदेश आ जाए तो हमे मजा ही मजा, लेकिन आराधक आत्मा को इसमें आनंद नहीं आता, **उसे तो किसी का कुछ भी लेने की इच्छा नहीं होती ।**

श्रीपाल काकाश्री के पैर मे गिरकर माफी मांगते है और उनका राज्य वापिस सौंपते हैं । कैसा होगा युद्धभूमि पर बना वो अद्भुत प्रसंग । जहाँ लेने के लिए युद्ध होते हों, उसी भूमि पर देने का यह अनोखा प्रसंग बना है ।

श्रीपाल पैर में गिरकर माफी मांगकर काकाश्री को राज्य वापिस देते हैं । काकाश्री खड़े है, युद्ध में हार की वजह से शर्मिंदा होकर नजरे नीची झुकाकर खड़े हैं । श्रीपाल उनके पैर पड़ते है । काकाश्री की नजर नीची होने से श्रीपाल पर पडती है, दृष्टि खुलती है । चित्त के द्वार खुल जाते हैं । कैसा है यह भतीजा ! अभी तो जिंदगी शुरु हुई है । अभी तो दुनिया देखी नहीं, जानी भी नहीं तो भी कितनी गंभीरता है, कितनी उदारता है ! कैसा विनयी है ! मुझे उपकारी मानकार मेरा राज्य लौटा रहा है । यह स्वप्न है या सत्य ? मेरे कारण यह इतने सालो तक भटका, कितनी आपत्तियों ने इसे घेरा तो भी यह राज्य दे रहा है । मैं वृद्ध हो गया, इतने सालो तक शासन किया, भतीजे का राज छिनकर सत्ता जमाई, तो भी राज्य का मोह नहीं छुट रहा है । इसने मधुर शब्दों मे राज्य वापिस मांगा तो भी मैं लोभी, राज्य सत्ता में आसक्त

बनकर युद्ध के लिए तैयार हो गया । मैं अभी भी राज्य छोडने के लिए तैयार नहीं हूँ, और यह युवानी में भी राज्य जीतकर लौटा रहा है । यह भतीजा है या भगवान ! धन्य है इस गुणवान भतीजे को ! धिक्कार है मुझ लोभी को ! कैसा विनय ! कैसी नम्रता ! कैसी सहिष्णुता ! कैसे भाववाही शब्द ! कहाँ से आया यह सब ? एक ही खून परंपरा होने पर भी जमीन आसमान का अंतर !!!

अजितसेन श्रीपाल के गुणों का आवर्तन करते हैं और अपने आप को धिक्कारते हैं । **जगत का सनातन नियम है कि जब तक परगुणदर्शन की दृष्टि का विकास नहीं होता, तब तक स्वदोषदर्शन की दृष्टि प्रकट नहीं होती, इससे ही परगुणदर्शन को धर्म का प्रवेशद्वार कहा है ।** गुणानुराग धर्म को प्रकट करता है । हमारे जीवन में गुणानुराग, परगुणदर्शन की भावना जागी या नहीं ? जहाँ जाते है वहाँ केवल अपनी ही प्रशंसा करना, अपने में गुण नहीं हो तो भी आरोपण करके गाना । अपने दोषों को भी सुंदर लेप करके गुण के रुप में गाते हैं । कैसी वृत्ति है हमारी ? परगुणदर्शन आदि धर्म–प्राप्ति के पूर्व की भूमिका है, वो भी हममें प्रकट हुई या नहीं ? यह यक्ष प्रश्न है ।

अजितसेन युद्धभूमि पर श्रीपाल के विनय, निःस्पृहता, उदारता, निःस्वार्थभाव देखकर विचारों में घिर गए हैं । अपने पर आज तक घमंड़ था, अब अपनी जात पर नफरत हो रही है । कहाँ श्रीपाल और कहाँ मैं ? कहाँ उसकी जवानी और कहाँ मेरा बुढापा ? कहाँ वो गुणो का उद्यान और कहाँ में दुर्गुणों से पूरा ? युद्धभूमि का युद्ध तो कब का पूरा हो गया है, शांति हो गई है, पर अब चित्तप्रदेश में विचारों का घमासान चालू हो गया है । अपने आप को धिक्कार रहे हैं । राज्य की लोलुपता में पूरा जीवन निचोड़ दिया, कभी आत्म–कल्याण का विचार ही नहीं आया ? खुद से प्रश्न कर रहे हैं, ''हे आत्मन् ! बड़प्पन किसमे है । मुझमे या भतीजे में ? इन भयंकर पापों से मेरी कैसी दुर्गति होगी, कौन बचाएगा ? दुर्गति दायक राज्य का क्या करना ?'' भावनाओं मे चढ़े है और उसी युद्धभूमि में वैराग्य भाव प्रकट हुआ है । स्वयं ने श्रमणवेश ग्रहण किया और यावज्जीव 'करेमि भंते' का उच्चारण कर लिया । विशुद्ध संयमजीवन का पालन कर ज्ञान–ध्यान में आगे बढ़ रहे है ।

कालांतर में अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ । आत्मकल्याण का मार्ग खुल गया है ।

अजितसेन कहते है, **''भले ही भूतकाल भयंकर था, जाग गए तो बच गए । आत्मजागृति तमाम दोष दूर कर अवश्य आत्म–कल्याण करेगी ।''**

हम जन्मतः गुणवान नहीं है, इससे श्रीपाल की कक्षा में नहीं आ सकते तो हमें क्या बनना हैं ? अजितसेन की तरह जागृति भाव आ गया तो कल्याण वरना धवल की तरह आखिर तक नहीं जागे तो गए काम से । दुर्गति हमारे लिए तैयार है ।

धवल उपकारी के उपकार भूल चूका है । श्रीपाल ने धवल को अपने महल में रखा है । श्रीपाल सात मंजिल की हवेली की छत पर सोए है । धवल को भयंकर रौद्रध्यान हो रहा है । आज तो श्रीपाल को मेरे हाथों ही परम धाम पहुँचा दूँ तो ही मुझे शांति होगी । हर योजना निष्फल हो जाती है और श्रीपाल बच जाते हैं । आज तो सोए हुए को ही खत्म कर दूँ, ऐसा सोचकर खुली कटार लेकर ऊपर चढ़ता है । शरीर ऊपर जा रहा है, अध्यवसाय नीचे नीचे जा रहे हैं । मारो...काटो...के भाव हैं । बिचारे धवल को कहाँ पता है कि कितनी भी योजना बनाई जाए पर पुण्य तो श्रीपाल के पक्ष में ही है । जब तक पुण्य बलवान है, तब तक मेरा ही नुकसान है ।

जीवन में कभी किसी का बुरा करने की इच्छा हो तो इतना जरुर सोंचना कि इसका पुण्य है, तब तक मैं कुछ नहीं कर सकने वाला हूँ । केवल निष्फलता देखकर परेशान होना है और ऐसे विचारों से भयंकर कर्मबंध कर दुर्गति और दुःख ही खड़े करना है । दूसरो को नुकसान पहुँचाने से सामने वाले का बिगड़े या नहीं बिगड़े, अपना तो बिगड़ता ही है । कभी किसी का खराब करने का विचार भी नहीं करना चाहिए । **हर व्यक्ति अपने पुण्य से कमाता है, आगे बढ़ता है । इस विचारधारा से जीवन की कई समस्याएँ दूर हो जाती है ।**

धवल में यह समझ नहीं है, इसलिए श्रीपाल के पीछे पड़ा है । खुली कटारी लेकर सीढ़ियां चढ रहा है, दुष्ट विचार चल रहे है, अचानक सीढ़ी

चूक जाता है, नीचे गिरता है, हाथ में रही खुली कटारी पेट के मर्म भाग में घुस जाती है, सौ साल पूरे हो जाते है, और सातवी नरक मे चला जाता है । अत्यंत धनवान श्रेष्ठी, बुद्धिशाली, सफल व्यापारी को भयंकर दुःख देनेवाली सातवीं नरक के भयंकर दुःख झेलने पड़ते है ।

धवल का जीव वहाँ से हमें चिल्ला–चिल्लाकर कह रहा है कि आखरी समय तक नहीं जागोगे, ईर्ष्या, आसक्ति, छीनने की प्रवृत्ति, इकट्ठा करने के भाव नहीं छोड़ोगे, तो मेरी तरह दुर्गति के द्वार खुले ही हैं । जागो ! जाग जाओ ! नहीं तो मारे जाओगे ।

धवल का संदेश...हमे सुनने में आ रहा है या नहीं ? क्या बनना है यह हमें ही निश्चित करना है ।

जन्मजात गुणवान...श्रीपाल,
दोष दूर कर जाग जाएँ तो...अजितसेन,
दोषों के साथ मरें तो... धवल

श्रीपाल नहीं बन सकते तो कमसे कम अजितसेन भी बन जाएंगे तो भी सद्गति हो सकती है, आत्मकल्याण का द्वार खुल सकता है ।

निसीही

सिद्धचक्र के प्रभाव से श्रीपाल निरोगी बने, स्वरुपवान बने, कोढ़ी के बदले ऐसे स्वरुपवान कुमार के साथ अपनी पुत्री मयणा को देखकर रुपसुंदरी रोने लगी, फिर पता चला कि, यह स्वरुपवान कोढ़ी ही है, तब हर्षित माता पूछने लगी कि यह कैसे हुआ ? तब मयणा कहती है कि जिनालय में वार्तालाप करने से 'निसीहि' का भंग होता है । यहाँ कोई बात कभी नही होती । विधि पूर्ण होने पर घर जाकर कमलप्रभा (श्रीपाल की माता) सब बात करती है । विकट परिस्थिति में अलग हुएँ माँ–बेटी बहुत समय बाद इकट्ठा होते है, पर जिनालय में बातें नही करते है ।

जिनशासन की विधि का कितना विवेक ! कितनी मर्यादा !

३. मैं कौन ? श्रीपाल या श्रीकान्त ?

श्रीपाल चरित्र में आने वाले दो पात्र...

(१) **श्रीपाल** – सब जानते हैं ।

(२) **श्रीकान्त** – श्रीपाल का पूर्वभव

दोनों एक ही जीव के अलग–अलग भव है, तो भी विचार–वर्तन में रात–दिन का अन्तर है । हमें निश्चित करना है, मुझे कौन भाता है । वर्तमान में मैं कोन हूँ ? किसके भावों में रमण करता हूँ ? श्रीपाल–श्रीकान्त दोनो का 'यथा नाम तथा जीवन है' और हमें कोई संदेश दे रहे है ।

श्री = लक्ष्मी **पाल**=पालन करनेवाला

श्री = लक्ष्मी **कान्त**=पति, मालिक

एक व्यक्ति पुण्य से मिली लक्ष्मी का मालिक बन बैठा है, दूसरा पुण्य से मिली संपत्ति में मालिकी भाव नहीं रखता, पर मुझे व्यवस्था ही करना है, ऐसा मानता है । यह नामानुसार अर्थ है, हम कैसे भावों मे रमते है ? यह हमें सोंचना है । जो पुण्य से मिली सामग्री पर अपना स्वामित्व समझता है, उसके भाव 'श्रीकान्तपक्षी' है । जो पुण्य से प्राप्त सामग्री अनासक्त भाव से सम्हालता है वो 'श्रीपालपक्षी' है । **याद रखिए, मालिकी भाव यानि आसक्ति**

भाव आया तो जीवनभर भयंकर, अकल्पनीय पापों की लाईन लग जाती है । श्रीकांत कैसे भयंकर पाप करता है और उनमें कितना आनंद लेते है ? रोज शिकार खेलने जाना, निरीह प्राणियों को मारना, मारने के बाद आनन्द कैसा ? यह भी याद नहीं आता कि इस आनंद के पीछे कितना कर्मबंध होगा ? कितना और कैसा पाप व्यापार ? शिकार के साथ कैसे तुक्के सूझते है ? कर्म की विचित्रता कैसी ? जंगल में नदी किनारे मुनि भगवंत काउस्सग्ग ध्यान में स्थिर हैं । गजब की साधना है, आत्मा मे लय लग चुकी है । उन्हे देखकर श्रीकांत को न जाने क्या सूझता है कि उठाकर नदी में गले तक डुबो देते हैं । वो तो मस्ती मे मस्त है, उनके मन जल क्या और स्थल क्या ? श्रीकान्त ने दुर्ध्यान में कठोर कर्म बांध लिए । **जिन मुनि के दर्शन मात्र से पापकर्म टूट जाते हो उनका इतना अच्छा निमित्त मिलने पर भी भयंकर कर्मबंध ? गुरुकर्मी जीवों की कैसी दशा ?**

अब आगे देखिए । श्रीकांत राजमहल के गवाक्ष मे बैंठा है । राजमार्ग पर सामने से साधु भगवंत आते दिखाई दिए, रजोहरण नजर आया और फिर तुक्का सुझा । तुरन्त सैनिक को आदेश दिया, ''यह चामरधारी कौन है ? उसे कोढ़ हुआ होगा, मक्खियाँ भिन–भिन कर रही होंगी, उन्हें उड़ाने के लिए यह चामर रखा होगा । जाओ ! उस कोढ़ी को नगर से बाहर निकालो, वरना पूरे नगर में कोढ़ फैला देगा ।'' कैसी असत् कल्पना ! भाग्य की विचित्रता देखो, कल्पनाओं के फितूर पैदा कर किसी को हैरान करना और कर्म बांधना ।

बस ! मैं राजा हूँ, मेरे पास सत्ता है, मैं सब कर सकता हूँ, इसी गुमान में है। मोहदशा सवार हो गई है, इससे पूरा जीवन पापमय हो गया है । मोहदशा के रास्ते चढ़े हुए जीव श्रीकांत के भावों में डूबकर कदम–कदम पर कर्मबंध कर रहे हैं।

अब श्रीपाल को सोंचिए। जो पुण्य से मिली सामग्री अनासक्त भाव से सम्हालता है, लूँ–लूँ का भाव नहीं रखता है, आती लक्ष्मी को भी सात बार

सोंचकर स्वीकारे, शत्रु के प्रति भी मैत्रीभाव हो, अपकारी को भी उपकारी मानता हो, यह सब श्रीपाल के भाव है । यह हमें देखना है कि हम कौन से भावों में रमण करते है ।

श्रीपाल को संपत्ति, राज्य चाहिए । उन्हे मिल भी जाते हैं, पर वो स्वीकारते नहीं । स्वर्ण–सिद्धि, महाकाल राजा का राज्य, अजितसेन राजा का राज्य, धवल की अमाप संपत्ति सब मिल रहा था, तो भी छोड़ दिया । विवेकबुद्धि नहीं हो तो मात्र लेने और इकट्ठा करने की ही इच्छाएँ होती है ।

श्रीपाल जो मोहाधीन होते, अविवेकी होते तो श्रीपाल ने यह सब स्वीकार कर लिया होता । मयणा पिता के वचन से श्रीपाल से लग्न करने के लिए तैयार हो गई है, तो भी श्रीपाल के अंतर में खेद है । यह सब विवेकबुद्धि हो तो ही आता है, और यह विवेक कर्म की पराधीनता में नही फँसा हो उसे ही आ सकता है ।

धवल और अजितसेन दोनों श्रीपाल को जान से मारने के लिए और सब हड़पने के लिए पैंतरे रचते है । श्रीपाल को पता है पर **दुश्मन की दुर्जनता देखकर अपनी सज्जनता छूट जाए तो श्रीपाल कैसा ?** ''जैसे के साथ तैसा'' सूत्र श्रीपाल का नहीं है । अजितसेन ने राज्य ले लिया है, जान से मारने के लिए सैनिक भेजे है, श्रीपाल तो दुर्जनता और अपकार को देखते भी नहीं है । सब पता है तो भी काका से कहतें हैं कि आपने इतने साल मेरा राज्य सम्हाला, किसी राजा ने हड़प नहीं किया, यह आपका उपकार है । **हमारी नजर में धवल भले ही दुर्जन है, पर श्रीपाल तो यही मानते हैं कि धवल सेठ ही मेरे बड़े उपकारी है । इस ऋद्धि समृद्धि का मूल धवल है ।** धवल मुझे जहाज में नहीं लाए होते तो मेरे पास क्या होता ? धवल ने दस गुना किराया लिया, धवल को मृत्यु के मुख से बचाया तो भी उसने मारने का षड़यंत्र रचा । ये सारी बातें कभी श्रीपाल के मन में नहीं आती ।

श्रीपाल ने कभी किसी को हैरान–परेशान नहीं किया । अपकारी को भी उपकारी मानते हैं । दूसरो की संपत्ति–सत्ता कभी स्वीकार नहीं की।

अपना सब नजर के सामने जाता दिख रहा है तो भी कोई अफसोस–आर्तध्यान नहीं है, बस अपनी मस्ती में ही मस्त है । आत्मभाव में लीन है । धर्म–सिद्धचक्रजी मिलने के पहले भी श्रीपाल में उदात्त गुण वैभव है ।

जीवन में कोई पाप नहीं है, हृदय साफ हैं । दुश्मनी, चित्त–तंत्र को स्पर्श भी नहीं कर पाई । जो मिला वो भी इकट्ठा करने की भावना नहीं हैं । दूसरो का लेने की बात तो दूर, उनका नुकसान हो ऐसी भी भावना नहीं, अपना कोई ले जाए तो भी उसके पुण्य का ले गया होगा, ऐसी उदात्त भावनाओं में श्रीपाल रमण कर रहे हैं ।

श्रीकान्त–श्रीपाल दोनों के भावों का आकलन किया, अब अपने विचारों की दिशा तलाशने के लिए अपना अंतर्निरीक्षण करना है, जो सतत आरंभ–समारंभ पाप–व्यापार में मस्त है। मिली हुई संपत्ति के प्रति ममत्व भाव और ज्यादा–ज्यादा पाने की तमन्ना, मेरी मेहनत। पुण्य से मिले हुए पर किसी और का हक नहीं, दूसरो को कष्ट में ड़ालकर आनन्द पाना ये भाव श्रीकांत जैसे है, ऐसे किसी भी भाव में हम भी हो तो समझना कि हम श्रीकांत=मालिक बन बैठे हैं।

चाहे जैसी परिस्थिति आए तो समभाव में रहकर परिस्थिति स्वीकारना, दूसकों का अपना करने ही इच्छा भी नहीं करना, अपने कारण किसी को परेशान नहीं करने की भावना हो, पुण्य से मिली संपत्ति में ममत्व भाव नहीं हो, मेरा कुछ नहीं है, पुण्य से जो मिला उसका सदुपयोग करने की भावना हो, दुश्मन के प्रति भी सद्भाव हो, विवेक बुद्धि का प्रकाश झिलमिलाता हो, तो समझना कि श्रीपाल के भावों का झरना भीतर में बह रहा है । अब आराधना के लिए कुछ अंशों में आत्मा की भूमिका तैयार हो गई है ।

श्रीकान्त का कल्याण क्यों ?

यह तो स्पष्ट हो गया कि हम श्रीपाल तो नहीं बन सके तो अब श्रीकान्त बनना है ? श्रीकान्त की तरफ नजर करने पर एक प्रश्न होता है कि श्रीकान्त

आखिर तो श्रीपाल बनकर तिरे न ?

उत्तर : भाई ! श्रीकान्त क्यों तिरे ? श्रीपाल क्यों बन सके । श्रीकान्त पापक्रिया में डूबे थे पर उनमें एक गुण था । आप में वह गुण है ? जो वह गुण होगा तो आप भी तिर जाएंगे ।

भयंकर हिंसक और पापी श्रीकान्त में निखालसता का गुण था । **पूज्यपाद् आगमोद्धारक सागरजी म.सा. कहते हैं कि हजारों दोषों के बीच भी एक गुण प्रधानता से सर्वस्व के भोग से हो तो अनेक गुणों को खींच लाता है ।** पाप–व्यवहार में मस्त श्रीकांत का सहज स्वभाव था कि 'चाहे जैसी पाप क्रिया की हो पर रात्रि में अपनी पत्नि–श्रीमती को सब कह देना । श्रीमती कभी उसके अशुभ कार्यों की प्रशंसा नहीं करती, बल्कि टोक देती थी । वो रोज कहती, ''ये जंगल में घूमते जीव आपका क्या बिगाड़ते है, जो आप उन्हें मारते है ? ये आपको परेशान नहीं करते, आपका कुछ नहीं बिगाड़ते तो इनका शिकार करके आपको क्या मिलेगा । साधु भगवंतो को परेशान करके, जीवो की हिंसा करके आप कौन सी गति में जाओगे ? कितने पाप बांधोगे ? अभी तो पुण्योदय है तो आपको सत्ता–संपत्ति–आरोग्य सब मिला है, पर जब पुण्य खतम हो जाएगा और पाप–कर्म का उदय होगा, रोग–व्याधि–वेदना–अंतराय कैसे सहन कर पाओगे ? रोज रात को यही बातें चलती ।

आप अपनी सब बात धर्मपत्नि से कह सकते हैं या नहीं ? कदाचित् आपकी पापक्रिया में आपकी पत्नि सम्मत हो तो फिर भी कह दो, पर ऐसे कार्यों में सम्मति नहीं हो, 'पुण्योदय से जो मिलेगा, उसमें चला लेंगे, पर ऐसी प्रवृत्ति मत करो' ऐसा बार बार कहती ही रहती हो, वो पत्नि कैसी लगे ? वो हितचिंतक लगे या टकटक करनेवाली लागे ? एक – दो बार पत्नि के मना करने के बाद पत्नि का कहना बंद हो जाए, पर आपके काले–सफेद करने के कार्य बंद नहीं होता है ।

श्रीकान्त आपके जैसे नहीं थे, इसलिए जीवन का कल्याण कर लिया । वो श्रीमती को रोज रात को कहकर हृदय खाली कर देते है। पत्नि भी उनकी आत्मा की चिंता करती है । रोज मना करती है, ऐसा नहीं किया जाता, तब श्रीकांत भी कबूल करते है, और निर्दोष भाव से कहते है, ''अब ऐसे पाप नहीं करुँगा ।'' स्वीकारने के बाद भी दूसरे दिन सुबह वही गिल्ली–डंडा और वही मेदान । रोज शिकार खेलने जाते , रोज श्रीमती समझाती पर श्रीकान्त को पत्नि के प्रति नफरत नहीं है । ''रोज टकटक नहीं करना, क्या रट लगाई है, स्त्रियों को क्या पता शिकार में कितना मजा आता है ?'' श्रीकान्त को ऐसे कोई विचार नहीं आते हैं । वो रोज सरल भाव से कह देते और हृदय खाली कर देते थे।

हमारे जीवन में अच्छी–बुरी प्रवृत्ति जिनके आगे निखालिस हृदय से कह सके ऐसा कोई व्यक्ति नहीं । ऐसा कोई तो होना चाहिए जिसके सामने अच्छी–बुरी क्रिया, भावों की तीव्रता–लघुता, उसके पीछे आने वाला आनंद भी व्यक्त कर सके । **पाप तो अशुभ है, कचरा है, मुर्दे जैसा है, जितना ज्यादा समय हृदय में रहेगा इतनी ज्यादा बदबू फैलायेगा, जम जाएगा ।** श्रीकान्त सरल भाव से जैसी बात हुई हो, वैसी कह देते, पत्नि की दो बात भी सुन लेते, तो भी पत्नि के प्रति नापसंदगी का भाव नहीं है। श्रीमती भी चिंता करती की इतनी हिंसा–पाप के बाद कौन सी गति मे जाओगे ? **धर्मपत्नि आत्मा की चिंता करती है, मात्र इहलौकिक शरीर, संपत्ति या वासना की चिंता करनेवाली धर्मपत्नि नहीं कहलाती ।** श्रीमती सतत श्रीकांत की दुर्गति न हो इसकी चिंता करती है । एक बार नगर में ज्ञानी गुरु भगवंत पधारे हैं । उन्हें श्रीकांत राजा के पाप–व्यापार की पूरी बात करती है और दुर्गति से बचने का उपाय पूछती है, तब गुरुवर उन्हें नवपद की आराधना बताते है। श्रीकान्त श्रीमती ने अत्यंत भावपूर्वक पाप के पश्चातापपूर्वक साथ–साथ सिद्धचक्रजी की आराधना की, जिससे वो श्रीकान्त में से श्रीपाल बने ।

श्रीपाल जैसा पापरहित जीवन बने तो बहुत अच्छा, अन्यथा पापमय जीवन में भी सर्वस्व के भोग से एकाध गुण आत्मा के प्रदेश–प्रदेश में खेलता कर देंगे तो उस गुण की प्रधानता से दूसरे गुण खींचे चले आएंगे, दोष टल जायेंगे, ऐसा श्रीपाल राजा का कहना है ।

मीठी बोली बोलो

अजितसेन काका ने बचपन में श्रीपाल से राज्य छीन लिया, रास्ते पर ला दिया, मार डालने की कोशिश की, फिर भी श्रीपाल अपने दुर्जन काका को राज्य लौटाने के लिए समाचार भेजते है । तब दूत को मीठी भाषा में बात करने के लिए बोलते है। ''आप उपकारी है, वर्षो तक राज्य संभाला ।'' कही भी दुश्मनी का भाव नहीं है ।

अजितसेन युद्ध हार जाते है, बंदी बनाये जाते है, श्रीपाल के पास जाते है तब पूज्य भाव से उनकी बेडीयाँ खोल देते है । पैरो में गिरकर माफी मांगते है । मीठी भाषा बोलकर अजितसेन काका को उनका राज्य लौटा देते है ।

अजितसेन हो या धवल हो ! स्वयंवर का अवसर हो या राधावेध का प्रसंग हो, कोढिया हो, लोग धिक्कार कर रहे हो इत्यादि कोइ भी प्रसंग में उंबर–श्रीपाल की बोली में कडवाश नही है । मीठी बोली जीवन सफलता का मंत्र है । यह बात श्रीपाल हम सबको समजा रहे है ।

4. पराकाष्ठा; उपकार और अपकार की...

श्रीपाल की कथा के दो पात्र –

१) श्रीपाल

२) धवल

दोनों एक साल भी साथ नहीं रहे, पर इस समय की दोनों की प्रवृत्ति ओर मनोदशा का विचार करें तो श्रीपाल उपकार की और धवल अपकार की पराकाष्ठा है । धवल, श्रीपाल पर निरन्तर अपकार करता जा रहा है, जान से मारने के लिए भी तीन–चार बार प्रयत्न किए, पर श्रीपाल को धवल के प्रति नफरत नहीं है, तिरस्कार और भय नहीं है ; अपना द्वेषी मृत्यु के मुख में पहुँच गया तो श्रीपाल उसे यम से भी बचा के ले आए हैं । वो अपकारी को भी उपकारी पिता तुल्य मानते हैं । **अपकार और उपकार की गाडी स्वयंभू चला करती है । दोनो अपनी–अपनी वृत्ति में मस्त है । कोई अपनी मनोवृत्ति छोड़ने के लिए तैयार नहीं है ।** धवल द्वारा होने वाली हैरानगति श्रीपाल को हैरानगति नहीं लगती है । धवल को श्रीपाल के उपकार कभी उपकार नहीं लगते । जहाज में धवल मित्रो के आगे अपनी बात रखता है, तब मित्र उसे समझाते है कि श्रीपाल ने तुझ पर कितना उपकार किया है, जहाज छुडाए, दस गुना किराया दिया, महाकाल से मुक्ति दिलवाई । सब कुछ चला गया, सब वापिस ला दिया । ऐसे व्यक्ति को उपकारी मानकर उसकी पूजा की जाती है, मारने की तो बात बहुत दूर रही । मित्रो के

समझाने के बावजूद भी धवल की दुर्जनता, अपकारवृत्ति, छीनने के भाव शांत नहीं होते । कर्म की कैसी विचित्रता ! सच्ची सलाह देनेवाले मित्र भी उसे अपने मित्र नहीं, दुश्मन लगते हैं । **हमारे जीवन में भी हमारी विचारधारा से विपरीत सच्ची सलाह हमे पसंद आती है या नहीं ? हमारी आत्मा में कालिमा या उज्ज्वलता कितनी है ? इससे नापा जा सकता है ।**

श्रीपाल की संपत्ति–पत्नियों को अपनी करने के लिए धवल ने कितने सारे प्रयत्न किए ! ''मैं खराब कर रहा हूँ यह ख्याल तक उसके मन में कभी नहीं आया। श्रीपाल को तो यह मेरा द्वेषी है, हैरान करता है, ऐसा कोई विचार स्पर्श भी नहीं करता, उल्टे वो तो सतत भला ही करते है । इस तरह श्रीपाल उपकार की पराकाष्ठा है, और धवल अपकार की पराकाष्ठा है ।

धवल ने श्रीपाल पर कितने अपकार किए :

१) धवल भरुच में देवी को बलि चड़ाने के लिए श्रीपाल को पकड़ने का प्रयत्न करता है । युद्ध करता है । रत्नद्वीप में श्रीपाल अपना व्यापार धवल को सोंप देते है । वो व्यापार में गड़बड़ करता है। सस्ते मे खरीदे हुए माल की कीमत अधिक बताता है और अधिक कीमत में बिके माल की कीमत कम बताता है।

महाकाल राजा के बंधन में से खुद को और अपनी संपत्ति छुड़ाने के लिए श्रीपाल को दी गई आधी संपत्ति, बब्बरकूट और रत्नद्वीप से दो राजकन्याओं के साथ विवाह के बाद दहेज में मिली समृद्धि को देखकर सब लेने की कुबुद्धि धवल में जोर करने लगी ।

रत्नद्वीप से निकलने के बाद श्रीपाल को मारकर सब अपना करने की बुद्धि से श्रीपाल को दरिये में ड़ाल दिया ।

श्रीपाल की पत्नियों को अपना बनाने के लिए सांत्वना के नाम पर दुर्व्यवहार का प्रयत्न किया ।

समुद्र में गिराने के बाद भी श्रीपाल को जीवित देखकर हृदय बैठ गया

फिर चाण्डाल का कलंक लगाकर जान से मारने की योजना बनाई ।

कलंक की योजना का पर्दाफाश होने पर राजा ने धवल को फांसी की सजा दी । उन्हें अपने ही महल में पिता के स्थान पर रखा तो भी धवल को शांति नहीं हुई । इर्ष्या की आग अंतर जला रही है । आखिर में अपने ही हाथों अपने उपकारी को खत्म करने आधी रात को कटारी लेकर ऊपर चड़ते हैं, और खुद मर जाता हैं ।

श्रीपाल को मारने के लिए ४–४ बार किये प्रयत्न निष्फल होते है, और अंत मे धवल ही मरता है ।

श्रीपाल जानते है कि धवल को मेरी संपत्ति–वैभव और पत्नियों को देखकर ईर्ष्या आती है, पर श्रीपाल धवल को कभी दुश्मन के रुप में नहीं देखते है । हर पल उसे सज्जन मानकर ही व्यवहार करते हैं । उपकार पर उपकार करते ही जाते है । अपकारी पर भी उपकार करते रहते हैं । अपकारी पर उपकार करनेवाले श्रीपाल उपकार की पराकाष्ठा है ।

चलो ! श्रीपाल ने धवल पर किए उपकारों की श्रृंखला सोंचतो है ।

जहाज में मुसाफिरी का किराया निश्चित की गई रकम से दस गुना किराया दिया ।

भरुच में देवी द्वारा अटकाए जहाजों को श्रीपाल ने छुड़वाया ।

बब्बर कुल में महाकाल राजा से मुक्त करवाकर संपत्ति वापिस दिलवाई ।

रत्नद्वीप में स्वर्णकेतु राजा ने कर नहीं चुकाने के कारण धवल को फांसी दी तब श्रीपाल ने छुड़वाया ।

कोंकण देश में चांड़ाल को कलंक का रहस्य खुलने पर राजा ने धवल को फांसी का दण्ड़ दिया तब मृत्यु के मुख से श्रीपाल ने बचाया और अपने महल में पिता के स्थान पर रखा ।

धवल की मृत्यु से पूरा नगर खुश है, नगर में से पाप गया, ऐसा मानते है । श्रीपाल बालक के जैसे रोते है ।

धवल की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति और जहाजों को सौंपने के लिए धवल के पुत्र की खोज करते है और सब उन्हें सुपुर्द कर देते है ।

श्रीपाल जब अपने साम्राज्य के मालिक बनते है, तब धवल के पुत्र को बुलाकर नगर सेठ की पदवी देते है ।

दोनो में से हमे कौन पसंद है ? हमारी वृत्ति कैसी है ? **उपकारी का छोटा भी उपकार भूलना नहीं, यह नैतिक दृष्टि से अच्छी बात है पर...**

महाअपकारी को भी उपकारी मानकर सतत उपकार करते रहना श्रीपाल वृत्ति है ।

उपकारी पर अपकार करना धवल वृत्ति है ।

हम कैसे है ?

अपकारी को भी उपकारी मानना श्रीपाल जैसी उत्तम वृत्ति है ।

उपकारी को उपकारी मानना मध्यम वृत्ति है ।

उपकारी को हैरान परेशान करना, अपकार करना धवल जैसी अधम वृत्ति है ।

श्रीपाल कथा के माध्यम से अपना जीवन दर्शन कर अपनी मनोवृत्ति पहचानना है, और उसमें योग्य सुधार करना है ।

उपकारी का उपकार मानना यह व्यवहार है ।
अपकारी का उपकार मानना यह धर्म है ।

5. अधिक क्या ?
श्रीपाल को मिला वो या श्रीपाल ने छोडा वो ?

नवपद–सिद्धचक्र के प्रभाव से श्रीपाल को धन–संपत्ति, वैभव, राज्य, पत्नियाँ आदि कितना–कितना मिला ? यह श्रीपाल कथा के वाचक, श्रोता को पता ही है ।

संपत्ति प्राप्ति और वैभविक बातों से बाल जीवों को (अध्यात्म–मार्ग पर नहीं चढे पुद्‌गल प्रेमी) अन्य कथाओं के बजाय इस कथा में विशेष रस जागता है, पर **श्रीपाल–कथा मात्र नवपद आराधना से मिलने वाली संपत्ति का दर्शन करानेवाली ही कथा नहीं है । थोड़ा चिंतन कर गहराई में जाएंगे तो पता चलेगा कि श्रीपाल को नवपद आराधना में जो मिला वो ज्यादा था या मिलने वाला या मिला हुआ अनासक्त भाव से छोड़ा वो ज्यादा था ?**

श्रीपाल को कितना मिला यह दिखता है, पर उन्होंने जरुरत के समय भी कितना त्याग किया, यह भी कभी सोंचा है ?

१) अपना साम्राज्य पाने के लिए सेना चाहिए, सेना के लिए संपत्ति चाहिए । श्रीपाल संपत्ति पाने के लिए अकेले ही निकले है । मार्ग में आए जंगल में गिरी पर दो साधकों को श्रीपाल के सांनिध्य से रस सिद्धि हुई । साधक वो रससिद्धि श्रीपाल को देने के लिए तैयार हो गए है, पर श्रीपाल सोंचते है कि, साधक कितने समय से महेनत कर रहा हैं, दूसरो की महेनत का मैं नहीं ले सकता । जरा सोचिए ! उपकारी को दी जानेवाली यह स्वर्ण–

सिद्धि श्रीपाल ने ले ली होती तो..कितना सोना बना सकते ? अपने जीवन की सारी समस्या दूर हो जाती फिर भी स्वीकार नहीं किया, छोड़ दिया ।

२) श्रीपाल को राजा बनने का अरमान है, पर किसी का उपकार लिए बिना सिर्फ अपने बाहुबल से राजा बनना है। बब्बर कुल नगरमें धवल को छुड़ाने के लिए श्रीपाल महापाल राजा के साथ युद्ध करते है । एक तरफ राजा और सैनिक है, दूसरी ओर केवल श्रीपाल है, तो भी श्रीपाल जीत जाते है। महाकाल राजा को हराने के बाद राजनीति के नियम से 'जीते उसका राज्य' यानि राज्य–सेना–संपत्ति सब पर श्रीपाल का अधिकार है, पर श्रीपाल महाकाल को उसका राज्य सौंप देते है । बाहुबल से मिले राज्य का भी त्याग कर देते है ।

३) धन–संग्रह करने निकले श्रीपाल को पता है, कि धवल मेरी इर्ष्या करता है, मेरा व्यापार बिगाड़ देगा, फिर भी अपने व्यापार की तमाम जवाबदारी धवल को सौंप देते है । मेरी आय कम हो जाएगी, कमाइ धवल ले लेगा, ऐसा कोई विचार नहीं करते ।

४) धवल पर श्रीपाल सतत उपकार करते है, फिर भी धवल के हृदय में शांति नहीं है । श्रीपाल को मारने के प्रयत्न में धवल खुद ही मर जाता है । धवल की मृत्यु के बाद धवल की समस्त संपत्ति श्रीपाल को मिल सकती थी । यूँ भी वहाँ धवल का कोई परिवारजन तो था नहीं और श्रीपाल सब कुछ रख लेते तो भी कोई ऊंगली करनेवाला नहीं था, फिर भी धवल के वारिसदार की तलाश करवा कर सब सुपुर्द कर दिया ।

५) स्वयंवर मंडप और राधावेध के प्रसंग में राजाओ से युद्ध में श्रीपाल जीत जाते है पर किसी का भी राज्य लेने की इच्छा नहीं रखते ।

६) अपना राज्य लौटाने की मीठी मांग से क्रोधित हुए अजितसेन काका युद्ध करके, श्रीपाल को अपने ही हाथों मारने के रौद्रध्यान की आग में जल रहे हैं। युद्ध में श्रीपाल जीत जाते है, पिता का राज्य और अजितसेन काका का राज्य–दोनो श्रीपाल के हो गए है, पर श्रीपाल उसी युद्धभूमि पर

क्षणभर भी विचार किए बगैर उनका राज्य लौटा देते है, उसमें भी तिरस्कार की भावना बिना, पूज्य भाव से ही राज्य दिया ।

ये सारे प्रसंग श्रीपाल के त्यागमय जीवन और अनासक्त भाव को उजागर करते है । एक तरफ श्रीपाल को जितना मिला उसे रखे और एक तरफ जितना छोड़ा उसे रखे, तो जो छोड़ा वो बढ़ जाएगा । पूरी जिंदगी जितना चाहिए उतना स्वर्ण बना सकते थे, कितने राज्य मिल सकते थे ? तो भी सब छोड़ देना, यही अनासक्त भाव की प्रतीति कराता है । **अपनी इच्छा, अपेक्षा, जरुरत होने पर भी वो पूरी हो सके, ऐसा होने पर भी अपनी शक्ति मिला होने पर भी उसका त्याग करना, यही आराधक भाव की निशानी है । हाय–हाय करके, अन्याय–अनीति करके, दूसरों को हैरान–परेशान कर के सबका ले लूँ ऐसी वृत्ति–मनोदशा वाला चाहे जितनी धर्म क्रिया करता हो, पर उसे धर्म परिणत नहीं हुआ ।** श्रीपाल हमें संदेश देते है कि धर्म परिणत करने के लिए न्याय–नीति, व्यवहार–शुद्धि, अंतर शुद्धि आदि विशेष रुप से जरुरी है ।

'मिला वो मेरा' और **'मिले उतना सब ले लूँ'**
इन भावो में हम अनादिकाल से रमण कर रहे है ।
यह रमणता तोड ने के लिए ही
सिद्धचक्र–नवपद की आराधना है ।

6. मयणा (मदना) और सुरसुंदरी

श्रीपाल कथा के प्रारंभिक विभागमें दो पात्र है–मयणा और सुर–सुंदरी । दोनों बहनें है । मयणा को संस्कृतमें 'मदना' कहा जाता है । दोनों के नाम में रहा गुप्त संदेश समझने जैसा है ।

मदना कहती है मद–ना, मद–अभिमान, न–नहीं, अर्थात् अभिमान नहीं करुंगी, अभिमान करता हो उसके सामने झुकूँगी नहीं, व्यवहार–मर्यादा नहीं चूकुँगी । मयणा को न तो रुप का अभिमान है, न संपत्ति का अभिमान है, उसके जीवन में है नम्रता, विनय और विवेक । मयणा मर्यादाशील है, वो कहीं चूकती नहीं है ।

सुरसुंदरी यानि ? सुर–देव, सुंदरी–कन्या, उसने देवकन्या जैसा अपने रुप को मान लिया है । जिससे जाहिर में मर्यादा चूकती है । अपने रुप के अनुसार वर पसंद किया है । उसकी इच्छानुसार पिता ने ठाठ–बाट से अरिदमन राजकुमार से शादी करवाई । सुरसुंदरी अपने घर तक भी नहीं पहुंच पाई । लग्न के बाद नगर में प्रवेशोत्सव के लिए नगर के बाहर रात रुके है । सुबह ढोल–शहनाई बजने वाले हैं, अबील–गुलाल उड़ने वाले है, तैयारियाँ परिपूर्ण हो चुकी है परंतु 'न जाण्युं जानकी नाथे' की तरह पहली रात में लुटेरों की आवाज सुनते ही अपनी नववधू को छोडकर क्षत्रिय होने के बावजूद अरिदमन भाग जाता है । सुरसुंदरी के अरमानों का महल ध्वस्त हो गया । राजरानी बनने का मनोरथ तो कहीं रह गया, और नटकन्या बनना पड़ा। लुटेरे सुरसुंदरी को नटमंड़ली में बेच देते है, वहाँ नाटक सीखना

पड़ता है । कैसी करुणता !

हमारी जिन्दगी में भी हम सोचते क्या है ? और क्या होता है । कभी सोंचा भी नहीं हो ऐसी परिस्थितियाँ आ खड़ी होती है । उन्हें स्वीकारना ही पड़ता है । अरिदमन राजपुत्र है, क्षत्रिय है, तो भी पत्नि को बचाने के लिए लुटेरो का सामना भी नहीं करता, कायर की तरह भाग जाता है । एक सामान्य इंसान भी अपनी पत्नि की रक्षा के लिए जान तक दे देता है, जबकि अरिदमन तो क्षत्रिय है । युद्ध तो उसके खून में है । आसमान छूने वाला पुण्य जब धरती पर आ जाता है, तब कौन क्या कर सकता है । सुरसुंदरी की पुण्य–लालिमा धूमिल होने लगी है, तीव्र निकाचित अशुभ कर्मोदय शुरु हो गया, तो बिचारे अरिदमन का क्या चलनेवाला था ? उसमें क्षात्रवट होने के बावजूद सुरसुंदरी का दुष्कर्म ही भागने का सुझाता है । कर्म की कैसी करुण स्थिति है । बाह्यरुप में पागल बनी सुरसुंदरी नाटक मंडली में कहाँ–कहाँ भटकती है । अपने आप को भी भूल जाती है । नृत्यांगना बनकर विविध खेल करती है । **जगत के जीवों की यही करुण स्थिति है, अपने आत्म स्वरुप को भूलकर कर्म के इशारों पर संसार के रंगमंच पर नाच रहे है ।**

सुरसुंदरी की नाटक मंडली बब्बर कुल के महाकाल राजा ने खरीदी और बेटी मदनसेना के लग्न के समय दहेज में दे दी । सुरसुंदरी को पता नहीं है, कि मैं जिसके आगे नृत्य कर रही हूँ वो मेरे बहनोई (जीजाजी) ही है । श्रीपाल को भी पता नहीं है कि यह नृत्यांगना मेरी साली है । जब प्रजापाल राजा श्रीपाल के सामने आते है दोनो पक्ष इकट्ठे होते है, तब आनंद के लिए श्रीपाल नाटक शुरु करने का आदेश देते है । नृत्यांगना खड़ी नहीं होती है, तब सबके सामने सुरसुंदरी का रहस्य खुलता है ।

अब मयणा की और दृष्टिपात करते है–

मयणा कहती है, मद–ना करना, मर्यादा में रहना, भले अंधेरा दिखे पर आगे प्रकाश है । भले यहाँ दुःख का दरिया दिख रहा है, पर उस पार तो सुख का सागर है । मयणा के सामने भयंकर दुर्गंधी, कुष्ठी वर आकर खडा

है पर पिता निश्चित करते हैं, तो मयणा हँसते मुँह स्वीकार लेती है । कोई खिन्नता, कोई उदासीनता नहिं, केवल प्रसन्नता ! पिता जाहिर में मर्यादा चुके है । बेटियों के बाद सबके सामने उसी सभा में वर की पृच्छा करते है । सुरसुंदरी तो इशारे से अपनी पसंदगी बता देती है और लग्न निश्चित भी हो जाते है ।

मर्यादाशील मदना से पूछने पर लज्जा–विवेकवती अधोमुखी बनकर मौन हो जाती है । पिता पुनः वही प्रश्न करने पर भान भूले पिता को जवाब नहिं देती है । मयणा समझती है कि आर्य–संस्कृति मे वर की पसंदगी माता–पिता करते है । वो जो पसंद करते है, वो बेटी को आजीवन मान्य ही होता है, और इस बात में माता–पिता तो निमित्त मात्र है । बाकी तो अपने अपने कर्म के हिसाब से परिस्थितियाँ निर्मित होती है । इसलिए मयणा कोइ जवाब नहिं देती, मर्यादा नही छोड़ती । वो जिनशासन का कर्मवाद पिताजी के समक्ष स्थापन कर पिता को स्थान पर लाने का प्रयत्न करती है । गुस्साए हुए पिता मयणा के सामने कोढ़ी के साथ विवाह का प्रस्ताव रखते है । मयणा उसे हँसते मुख से स्वीकार कर लेती है ।

यहाँ सोचने की बात है कि मयणा कितनी मर्यादाशील है ! शास्त्राभ्यास तो किया है पर वैराग्य भाव नहीं है । ऐसी विकट स्थिति आने पर भी वैराग नहीं होता । दीक्षा के भाव नहीं है, आर्य मर्यादा भी तोड़ती नहीं है । खुदने जो कर्मवाद की स्थापना की है, उसे आगे कर पिताजी को कह सकती थी, 'पिताजी ! यह तो आपका लाया हुआ वर है । मेरे कर्म में जो होगा उसे मैं पसंद कर लूंगी ।' ऐसा कहकर वो अंधकारमय जीवन से तत्काल छूट सकती थी, पर विवेकी किसे कहा जाता है ? मर्यादाशील किसे कहा जाता है ? भरी सभा में आत्मविश्वास और दृढता से कर्म–सिद्धांत स्थापन करने वाली मयणा ने बिना किसी तर्क–दलील किए, हिचकिचाहट के बगैर, क्षणमात्र के विलंब बिना कोढ़ी को स्वीकार लेती है । कौन समझ सकता है मयणा की इस मर्यादा–पराकाष्ठा को ?

मयणा कहती है–**मर्यादा में आनंद है । पिता मर्यादा चूके, सुरसुंदरी भी मर्यादा चूकी है, सभाजन भी मर्यादाभंग के साथ सुरसुंदरी के अरिदमन से लग्न की घोषणा सुनकर हर्षाते–हर्षाते मर्यादा चूक जाते है । मयणा सोंचती है कि, सब मर्यादा चूकेंगे तो कुदरत मर्यादा में कैसे रहेगी ? मर्यादा की सीमा–रेखा होती है, उसमे बहुत कुछ छोड़ना पड़ता है, परंतु अंततः वही रक्षणहार है ।**

मयणा समझती है कि पिताजी जो कह रहे हैं कि ''मैं जो कहता हूँ वो होता है'' वह बात व्यवहार नय से सत्य है, परंतु वो गर्व के कारण मर्यादा–भंग कर रहे है । उन पर मान–कषाय सवार हो गया है । गलत रास्ते चढ़ गए है, तब उन्हे कर्मवाद समझाना अलग बात है, पर वर की पसंदगी तो पिता का ही अधिकार है । आर्य संस्कृति का व्यवहार विकट स्थिति का सर्जन कर रहा है, पर मयणा उसे अखंड़ रखती है । यह है स्याद्वाद की परिपक्वता । स्याद्वादी कभी मर्यादा नहीं तोड़ता । मयणा कहती है–मर्यादा में रहिए, भले तत्काल लाभ नहीं दिखता । सत्ता, संपत्ति, सौंदर्य, रुप, ऐश्वर्यादि किसी का भी घमंड मत कीजिए । लज्जा, मर्यादा, नम्रता रखे तो सर्वत्र आनंद है । पिता ने मयणा को कोढ़ी के साथ बिदा किया, कोढ़ी उंबर छोड़कर जाने की बात कहते है, पर मयणा नहीं जाती । रुप, लावण्य, आरोग्य, सुख शांति खतरे में है तो भी वो उंबर को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होती । विपरीत स्थिति में भी मयणा को पिता के प्रति द्वेषभाव नहीं पूज्यभाव है । पिता ने क्रोध में भले अकार्य किया पर मयणाने मर्यादा पार नहीं की । आाखिर मैं कैसी स्थिति बनी ? यह नजर के सामने ही है । अंत में...

मयणा और सुरसुंदरी दोनो बहने है –

मयणा कहती है–जीवन में कहीं मद–अभिमान मत करो, जीवन नंदन वन बन बाएगा ।

सुरसुंदरी कहती है–जीवन में कही भी अभिमान करेंगे तो दुःखी दुःखी होकर मेरी तरह भटकना पड़ेगा (भवभ्रमण करना पड़ेगा), सब चला

जाएगा।

दोनो बहनों का यह संदेश हर जीव अपने हृदय में स्थिर करे, तो जीवन आनंदमय–समाधिमय बनता है और जीव कल्याण–यात्रा के सच्चे पथिक बने।

कैसी है मयणा की श्रद्धा ?

पूरा नगर भयभीत है, आकुल–व्याकुल है, जान–माल का क्या होगा ? इसकी चिंता है । शत्रु सेना ने घेरा ड़ाल दिया है । ऐसे समय में कमलप्रभा मयणा से कहती है, 'बेटा ! अब अपना क्या होगा ? श्रीपाल को गए, लगभग १ साल हो गया, कोई समाचार नहीं है । सब भयभीत है, हमारे घर कोई नर नहीं है, क्या करेंगे ?

सासु माँ की बात सुनकर मयणा घबराती नहीं है और विश्वासपूर्वक कहती है, 'माता ! नवपद के प्रभाव से कोई भय नहीं है, कभी आनेवाला भी नहीं है, और आज प्रभु–पूजा करते मुझे अपूर्व आनंद हुआ, रोमांच भी हुआ । **जब–जब पूजा याद आती है मेरे रोम–रोम खड़े हो जाते है, फिर भय कैसा ? कुछ अमंगल नहीं होगा, शुभ ही होगा, अच्छा ही होगा ।**

मयणा की सिद्धचक्र–नवपद–प्रभु के प्रति कैसी अटूट श्रद्धा ?

पूरे नगरमें भय व्याप्त है । राजा भी सोच रहे है कि क्या करे ? पर मयणा निर्भय है । मयणा को पता नहीं है कि मेरे पतिदेव ही सेना लेकर आए है, पता सिर्फ इतना ही है कि, **सिद्धचक्र है तो सुरक्षा है, भय को कोई स्थान ही नहीं है । इससे ही 'त्वमेव शरणं मम' का भाव जीवन में एकरस हो गया है, आत्मा के प्रदेश–प्रदेश में खेल रहा है।**

प्रभु की पूजा करते करते कभी हमें ऐसा अपूर्व आनंद आया है क्या ? रोमांच खड़े हुए है क्या ?

सच्चा कौन ?

सुरसुंदरी और मयणा दोनो पंड़ित के पास अध्ययन पूर्ण करती है । पिता राज सभा में परीक्षा लेते है । संतान क्या पढ़ते है ? इसकी चिंता पिता करते थे, और आज !

सुरसुंदरी और मयणा को पादपूर्ति दी जाती है–प्रश्न किया गया हैं– 'पुण्य से क्या मिलता हैं ?'

सुरसुंदरी जल्दी–जल्दी कहती है, 'यौवन, अच्छा सुख, बुद्धि कौशल्य, धन, मनपसंद पति सब पुण्य से मिलता हैं' ।

धीर, गंभीर, मयणा कहती हैं, 'विनय, विवेक, प्रसन्नता, शील और मोक्षमार्ग के साधन पुण्य से मिलते हैं ।

दोनो के जवाब अलग–अलग है, तो दोनो में सच्चा कौन ?

दोनो के जवाब सच्चे है । एक के जवाब में एक इहलौकिक और भौतिक लाभ की बात है, दूसरे के जवाब में आत्मलक्षी लाभ की बात है । दोनों लाभ पुण्य से ही मिलते है । **जिसकी दृष्टि जैसी खिली हो, उसको उसमें आनंद आता है ।**

वाचा के आधार पर सुनने में आने वाले के आचार पर परिणति का अंदाज होता है । हमारी परिणति कैसी है ? भौतिकलक्षी या आध्यात्मिक लक्षी ?

तप कब पूरा होता है ?

नवपद की ओली यानि साड़े चार साल में यह तप पूर्ण होता है, ऐसा व्यवहार में कहा जाता है पर **'साड़ा चार वर्षे तप पूरो, ए कर्म विदारण तप शूरो'** ज्ञानी भगवंतो के इस वचन अनुसार तप पूरा कब होता है ? प्रथम चरण स्वीकार कर हमने पूर्णविराम लगा दिया, पर महत्वपूर्ण दूसरा चरण छोड़ दिया. अनादिकालीन परंपरा के कर्म तोड़ने का सामर्थ्य आत्मा में प्रगटे

ऐसा यह तप है । **कर्मसत्ता को परास्त कर आत्मसत्ता का समय यह तप निश्चित कर देता है,** फिर सहज तप, आराधना चला करती है, आत्मा के हर प्रदेश पर नवपद–सिद्धचक्र का वास हो जाता है । क्षण–क्षण में, पल–पल में सिद्धचक्र का ध्यान–रटन–अंतर जाप शुरु हो जाता है । जिसके प्रभाव से दुष्ट–मलिन कर्म निर्बल बन गए हो, तो यह भूमिका साढे चार साल में आती है । नौ ओली विधिपूर्वक की जाए तो यह तप कर्म तोड़ने में समर्थ है । साढ़े चार साल में नौ ओली करने से यह भूमिका आती है । श्रीपाल ने यह भूमिका प्राप्त कर ली और मोक्ष–निश्चित हो गया ।

सिद्धचक्र की आराधना अनादि कर्म–चक्र को तोड़कर संसार को सीमित कर उसी या नजदीक के भवमें शाश्वत स्थान दिलाती है । हमारी भी ऐसी भूमिका नियत हो जाए तब समझना कि तप पूरा हो गया ।

नवपदजी की ओली में प्रतिक्रमण–पूजा–स्नात्रपूजा–कायोत्सर्ग–समवसरण–साथिया–जाप–आयंबिल कर लिया मतलब आराधना हो गई, पर ये सब बाह्य क्रियाएँ तो अभ्यन्तर भावो को चार्ज करने के लिए है । इतने क्रिया–अनुष्ठान करने के बाद बाकी का समय उन–उन पदों के ध्यान में रहने का है । चित्त को उस पदमय बनाना है । पूरा एक दिन एक पद के ध्यान में जाए, पद के गुण, वर्ण का ध्यान, मंत्र, जाप का ध्यान यूँ किसी न किसी ध्यान के माध्यम से अभ्यंतर आराधना–तप में प्रवेश करना है । (जो आज भूला दिया गया है) इस तरह नौ दिन एक–एक पद का ध्यान करने से चार्ज हुई आत्मा की बैटरी ६ माह काम करती है । हर छह माह में पुनः बैटरी चार्ज करना । ऐसे ९ बार आत्मशक्ति चार्ज करना यानि हमेशा के लिए आत्मा की बेटरी चार्ज ही रहने वाली है । आत्मा नवपदमय बन जाती है, संसार के भावों से अलिप्त हो जाती है, आरंभ–समारंभ के भावों से सहज मुक्त बन जाती है, श्रीपाल के जैसे सिद्धचक्र के ध्यान में लीन बन जाती है, सिद्धचक्र से भवोभव का सम्बन्ध बन जाता है । **आत्मा को परमात्मामय बनाकर आत्मा में ही परमात्मतत्व प्रगट कराए यानि यह तप पूर्ण होता है ।**

7. एक अनुचिंतन
श्रीपाल कथा यानि अपनी आत्मकथा

श्रीपाल कथा धर्मकथानुयोग तो है ही, परंतु इस कथा का यौगिक और आध्यात्मिक रीति से निदिध्यासन और चिंतन किया जाए तो विशिष्ट तत्व प्राप्त होते हैं । किसी भी कथा को अपने जीवन या आत्मा में घटाने के लिए ज्ञान नहीं, प्रज्ञा की जरुरत है । एक बार दृष्टि खुल जाए, फिर हर कथा पर इस तरह विचार किया जा सकता है–

- श्रीपाल यानि हमारी आत्मा । श्रीपाल कथा में श्रीपाल का प्रवेश कोढ़ी के रुप में होता है । हाल बेहाल है, संपत्ति, वैभव, सत्ता, सब चला गया है । गाँव–गाँव भटकना पड़ रहा है ।

  हमारी आत्मा भी कर्मरुपी कोढ़ से ग्रस्त है । गुण संपत्ति, आत्म वैभव, स्वरमणता की सत्ता सब कुछ गुम हो चुका है, और एक भव से दूसरे भव में भ्रमण चालू है ।

- उंबर को सद्विचार वाली मयणा मिलती है, फिर उसकी अच्छी स्थिति के द्वार खुलते है, हमें भी सन्मति (कषायो का उपशमन) आए फिर अध्यात्म स्थिति के द्वार खुलते है ।

- श्रीपाल को स्वसाम्राज्य पाना है तो एकाकी बनकर पुरुषार्थ करने निकलते है, ससुरजी या अन्य किसी की सहायता की इच्छा नहीं करते ।

हमें भी जब स्व+आत्म स्रामाज्य पाने की तमन्ना जाग जाती है तब स्वपुरुषार्थ से ही वह पाया जा सकता है । परमात्मा मार्ग बताते है, पुरुषार्थ तो हमें ही करना है । दूसरो की सहायता से कैवल्य या सिद्धि– आत्म साम्राज्य नहीं पाया जा सकता । श्रीपाल अकेले निकलते है और रास्ते में गिरि कंदरा में योगी मिलते हैं । वो स्वर्ण देने की पेशकश करते हैं, पर श्रीपाल लेने से इंकार कर देते हैं, लालच नहीं है ।

हमारी आत्मा भी एकाकी बनकर स्वसाम्राज्य पाने के लिए साधना–मार्ग पर जाते हैं, तब अनेक लुभावनी सिद्धियाँ सहज मिलती है । साधक इनमें लालच करे तो साधना मार्ग अवरुद्ध हो सकता है । लोभ छोड़कर साधक साधना के लक्ष्य में स्थिर बने, तो ही आगे बढ़ सकता है ।

- श्रीपाल साधकों का स्वर्ण छोड़कर आगे बढ़ते है । भरुच में उन्हें धवल मिलता हैं । धवल श्रीपाल को हर जगह परेशान ही करता है, उनका सब छिन लेने का ही प्रयत्न करता है । श्रीपाल सब जानते है, पर धवल को नहीं छोड़ते है । उल्टे जब–जब धवल को मृत्यु दंड़ मिलता है, श्रीपाल ही छुड़वाते है ।

हमारी आत्मा श्रीपाल है, तो धवल मोहनीय कर्म है । साधक जब एकाकी बनकर आत्म साम्राज्य पाने निकलता है, और लुभावनी सिद्धियों से दूर रहता है, तब मोहनीय कर्म स्वयं सिर उठाता है और कदम–कदम पर आत्मा को परेशान करता है, तो भी हमें वो अच्छा लगता है । जब–जब वो मृत्यु के किनारे (११वें गुणस्थानक) पहुँचता है, तब–तब आत्मा ही उससे खींचकर उसे बचाता है ।

- श्रीपाल को खत्म करने की सारी योजनाएँ निष्फल होने पर भी धवल के अंतर में शांति नहीं है । श्रीपाल ने धवल को अपने महल में रखा है, वो सोचता है कि सारी योजना योजनाएँ नाकाम हो गई, अब तो मै अपने हाथो से ही कटार मार कर सौ साल पूरे कर दूँ । ऐसे रौद्रध्यान के अध्यवसायों के साथ हाथ में कटार लेकर धवल उपर चढ़ता है । श्रीपाल

सात मंजिल की हवेली में छत पर गहरी नींद सोए है। धवल उपर चढ़ते चूक जाता है । वहाँ से लुढकते हुए नीचे गिरता है, और हाथ में रही कटारी पेट के मर्म स्थान में लग जाती है । श्रीपाल को मारने जाते खुद मर जाता है ।

आत्मा (श्रीपाल) को हैरान करनेवाला मोहनीय कर्म (धवल) कब मरता है ! श्रीपाल सात मंजिल की हवेली की चांदनी (छत) यानि आठवी मंजिल पर सोए है, लीन है । आत्मा जब ८ वे गुणस्थानक पर अपने में लीन बनता है (क्षपक श्रेणि पर चढ़ता है) तब मोह को मरना पड़ता है। (अभी तक श्रीपाल ८वी मंजिल पर नहीं सोए थे) मात्र अंतर्मुहर्त में मोह स्वयं नष्ट हो जाता हैं ।

श्रीपाल एक वर्ष में आठ पत्नियों के साथ लग्न करते हैं । आठ स्त्रियॉ श्रीपाल को वरी हैं । ऐसे आत्मा भी अविरत गति से साधना में आगे बढ़े तो सिर्फ एक वर्ष के समय में अष्ट महासिद्धियाँ साधक का वरण (प्राप्त) कर सकती है । इस तरह विविध दृष्टिकोणों से इस कथा पर अधिकाधिक चिंतन किया जा सकता है । लगभग सभी कथाओं में ऐसे तत्व समाहित होते ही है, यदि चिंतक की दृष्टि स्पर्शे, तो अनेक तत्त्व मिल सकते हैं ।

समूह आराधना–अनुमोदना

श्रीपाल के पूर्वभव में श्रीकान्त–श्रीमती द्वारा की गई सिद्धचक्र की आराधना की अनुमोदना श्रीमती की आठ सखियों और श्रीकान्त के ७०० सैनिकोने की, जिसके प्रभाव से दूसरे भव में अलग–अलग स्थान पर जन्मे तमाम जीव एक साथ इकट्ठे हो गए ।

साथ में की गई आराधना और समूह में होने वाली अनुमोदना का यह प्रभाव है । परिवार–स्वजन या आराधक मित्रों के साथ आराधना– अनुमोदना की जाए तो भवान्तर में साथ मिलकर पुनः समुह आराधना कर सब साथ में मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ते रहे । यह संदेश श्रीपाल कथा से प्राप्त होता है ।

४. श्रीपाल कथा का रचना कौशल

जिनशासन में चार अनुयोग के विभाजन द्वारा तमाम प्रकार के जीवों को आत्म–चारित्र भाव में स्थिर करने की पद्धति है । उनमें बालजीव=जो आत्मा, सिद्धात्मा या परमात्मा का स्वरुप नहीं समझे हैं और तीव्र मेघा शक्ति रहित है, ऐसे जीवों के लिए कथानुयोग सर्वश्रेष्ठ माना गया है । सत्–असत् प्रवृत्ति के फल सुनकर **सत् प्रवृत्ति में स्थिरता आए और असत् प्रवृत्ति से निवृत्ति हो, यह धर्मकथा का फल है ।**

धर्मकथानुयोग में श्रीपाल कथा बालजीवो को अत्यन्त आकर्षित करे ऐसी कथा है, क्योंकि उनका रस पुद्‌गल में है । वो संपत्ति, सत्ता, कौतूहल की बात आती है, तो खुश हो जाते है । श्रीपाल कथा में कोढ़ी उंबर और पिता द्वारा कोढ़ी के साथ विवाहित मयणा को सिद्धचक्र के प्रभाव से अपार ऋद्धि–समृद्धि के साथ अखंड़ साम्राज्य भी मिलता है..ऐसी बात सुनकर पढ़कर बालजीव भी धर्माराधना की ओर बढ़ते है ।

पूर्वागम के आधार पर रची हुई यह श्रीपाल–कथा तो अद्‌भुत है ही, साथ साथ पूज्य आचार्य देवश्री रत्नशेखरसूरीश्वरजी म. की रचना शक्ति भी अद्‌भुत है । पूज्यश्री ने धन, संपत्ति, वैभव, विवाह और सत्ता की बातें भी इस तरह से की है, कि बालवाचक और बालश्रोता का मन बार बार सिद्धचक्र–नवपद की तरफ जाता है, और उनका हृदय नवपद में स्थिर हो जाता है । आठ स्थानों पर नवपद का वर्णन और जगह–जगह सिद्धचक्र का स्मरण करवा कर श्रोताओं को सुषुप्त मन तक ले जाकर नवपद को मानस में स्थिर

करने का प्रयास किया है, ताकि श्रोता–वाचक वर्ग पौद्‌गलिक भावो से लौटकर पुनः पुनः नवपद में लीन हो ।

नवपद–सिद्धचक्र के वर्णन में भी शुरुआत में सामान्य स्वरुप बताकर आगे –आगे सूक्ष्म–सूक्ष्मतर वर्णन और अंत में नवपद के तात्विक–आत्मिक स्वरुप तक ले गए है । वाचक या श्रोता जैसे–जैसे श्रीपाल कथा पढ़ते जाए या सुनते जाए वैसे–वैसे नवपद की गहराई में उतरते जाए, ऐसी कुशलता का उपयोग पूज्यश्रीने किया है ।

मनोविज्ञान की दृष्टि से बाह्यजीव–पुद्‌गलानंदी जीवों के भी सुषुप्त मन तक नवपद को स्थिर करने का दृढ़ प्रयत्न किया है । एक बार सिद्धचक्रजी से लगाव हो गया, तो धीरे धीरे पुद्‌गल से संबंध कमजोर होता जाएगा, पूज्यश्री ने यह सिद्धान्त अपनाया है

पूज्यश्रीने श्रीपाल–कथा में लगभग अलग–अलग आठ स्थानों पर अलग–अलग व्यक्तियों के मुख से सिद्धचक्र–नवपद का परिचय, महिमा, विधि, स्वरुप या तात्विक वर्णन करवाया है, और बार–बार स्मृति करवाई है । पहले आठ बार के वर्णन को देखते है –

१) कथा के प्रारंभ में गौतम स्वामीजी श्रेणिक महाराजा के समक्ष नवपद–महिमा का प्राथमिक वर्णन करते है.

२) पूज्य मुनिसुंदरसूरीश्वरजी म.सा मयणा और उंबर के आगे सिद्धचक्र की महिमा और इहलौकिक और परलौकिक प्रभाव का वर्णन करते है ।

३) रत्नद्वीप में चारणमुनि ने सिद्धचक्र का वर्णन किया और श्रीपाल को सिद्धचक्रजी कैसे प्रसन्न हो ? यह बताया ।

४) श्रीपाल द्वारा किए गए सिद्धचक्र पूजन विधान का विस्तार से सुंदर वर्णन है ।

५) श्रीपाल सिद्धचक्र का विस्तार से ध्यान करते है, यह ध्यान–विधि अनुकरणीय है ।

६) अवधिज्ञानी अजितसेन राजर्षि द्वारा किया गया तात्विक वर्णन पूर्वभव में की गई आराधना का वर्णन रसप्रद हैं ।

७) गौतम स्वामी नवपद के फलित दृष्टांत के साथ महिमा बताते हैं ।

८) अंत में श्री महावीर प्रभुने आत्मा ही अरिहंतादि है, ऐसा निश्चयनय का स्वरुप बताया है ।

इतनी बार विस्तृत वर्णन करने के साथ श्रोता बार बार सिद्धचक्र की तरफ मुड़े, संस्कार दृढ़ बने, सुषुप्त मन तक असर पहुंचे, इसलिए कदम–कदम पर सिद्धचक्र के स्मृति स्थान अरिहंतादि को वर्णित किया है ।

❖ श्रीपाल–मयणा आदिनाथ प्रभु के दर्शन करने गए । ❖ उंबर नियमित अभ्यास करते है । ❖ नौ दिन में उंबर को रोग–शांति । ❖ नित्य दर्शन करने जाना । ❖ जिनालय में कमलप्रभा माता से मिलन । ❖ रुप–सुंदरी का मिलना, रोना, सही जानकारी पाना । ❖विदेश प्रयाण करते मयणा–श्रीपाल की बात ।

❖सिद्धचक्र का ध्यान करना। ❖गिरिकंदरा में साधको के लिए सिद्धचक्र ध्यान । ❖ सिद्धचक्र का ध्यान कर एक गर्जना से देवी को दूर हटाई । ❖रत्नसंचया में मदन–मंजूषा प्रभु की भक्ति करती है। ❖ यहाँ श्रीपाल द्वारा द्वार खुलते है, चैत्यवंदन करते है, चारणमुनि का आगमन, नवपद–वर्णन । ❖राजा के साथ श्रीपाल की नित्यपूजा । ❖चैत्री ओली आराधना । ❖समुद्र पतन के समय श्रीपाल के मुख में ''णमो अरिहंताणं '' ❖श्रीपाल की दो पत्नियों के पास चक्रेश्वरी, माणिभद्र आदि का आगमन। ❖१00 योजन दूर कुंडलपुर में वीणावादन परीक्षा के लिए सिद्धचक्र का ध्यान किया और विमलेश्वर हाजिर हो गए । ❖विमलेश्वर द्वारा दिए हार के प्रभाव से वामन–कुब्जरुप किया और दो राजकुमारियों से लग्न । ❖सोपारक नगर में सिद्धचक्र ध्यान और हार के अभिषेक–जल द्वारा साँप के जहर का शमन । ❖ मयणा कहती है कि नवपद–ध्यान के प्रभाव से कोई भय नहीं आता । ❖मयणा श्रीपाल प्रजापाल से कहते है कि यह प्रभाव

सिद्धचक्र का है । ❖ अजितसेन राजा को युद्धभूमि पर वैराग्य । ❖ अजितराजर्षि की श्रीपाल द्वारा की गई स्तुति । ❖ अजितसेन राजा द्वारा पूर्वभव की आराधना का कथन । ❖ श्रीपाल की ४.५ वर्ष सिद्धचक्र आराधना–उद्यापन, विस्तार से पूजन विधान–चैत्यवंदन विधान । ❖ अंत में श्रेणिक राजा भी प्रभुवीर की वाणी से नवपदमें तत्वदृष्टि वाले बने ।

इस तरह पूज्यश्री ने बार–बार श्रोता या वाचक ध्यान सिद्धचक्र–नवपद की ओर जाए, और वो पौद्गलिक भावो से मुक्त बने ऐसी शुगर–कोटेड क्वीनाइन गोली के रुप में श्रीपाल–कथा मोहलक्षी जीवो के सामने रखी है ।

इसके साथ कर्मवाद–अनेकांत वाद, सामाजिक व्यवहार, संतानो के प्रति कर्तव्य, अभिमान–ईर्ष्यादि का फल, समूह–आराधना का फल, पूर्वभव की आराधना के संस्कार, जिनपूजन विधि. अंगरचना, निसीहि का प्रयोगिक रुप, गंभीरता, मर्यादा, उपकार देखने की सूक्ष्म दृष्टि आदि अनेक मार्मिक–तात्विक बाते पू.आ. रत्नशेखरसूरि म.सा.ने सहजता से कथा में परोसी है । इससे कोई भी व्यक्ति सिद्धचक्र की ओर आकर्षित होता है, और साथ–साथ उसमे अनेक शुभसंस्कारो की विचारधारा दृढ होती जाती है, ऐसा रचना–कौशल पूज्यश्री का है । नमन हो ऐसे पूज्यश्री को..

वाह कर्मराज ! तेरी विचित्र लीला..

श्रीपाल जन्मते ही राजकुमार बने, बाल्यावस्था में ही राज्य, सत्ता, संपत्ति, परिवार, शरीर का आरोग्य सब चला गया, अकेले होकर कोढ़ियो के समूह में मिलना पड़ा । पुनः सत्ता मिली, अखंड़ साम्राज्य मिला, मात्र एक ही वर्ष में नौ–नौ राजकन्याओ के साथ लग्न हुआ । अपने पिता का साम्राज्य पाया, और अंत में सबसे निर्लिप्त बनकर नवपद में लीन हो गए ।

वाह रे कर्मराजा ! राजा को रंक और रंक को राजा बनाने की तेरी गजब की कला है ।

9. किया हुआ धर्म कभी निष्फल नहीं होता

आचरित धर्म–आराधना भवान्तर में कहीं न कहीं आत्म–कल्याण के लिए उपयोगी बनती है, वो निष्फल नहीं जाती, यह बात अजितसेन राजा के जीवन–प्रसंग में स्पष्ट परिलक्षित होती है ।

श्रीपाल को जान से मारने के लिए भीषण युद्ध हेतु तैयार हुए, भयंकर रौद्र ध्यान में रत होने पर भी उसी युद्धभूमि में अजितसेन राजा को वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ, और सर्व संग का त्याग कर आत्म–स्वरुप में रमणता कराने वाला संयम जीवन स्वीकार कर लिया । रौद्रध्यान में भटकते व्यक्ति को अचानक स्वरुप रमणता–वैराग्य भाव आया कैसे ?

पूर्व के सिंहरथ राजा के भव में अजितसेन राजा ने जीवन की ढ़लती संध्या में संयम स्वीकार कर, विशुद्ध आचार का पालन कर अंत में एक मास का अनशन किया है । इस त्याग, संयम और स्वरुप रमणता के संस्कार आत्मा पर जाम हो चुके है ।

किसी दुष्कर्म के कारण आत्मा चाहे जैसी अवस्था में चली गई हो, तो भी योग्य समय पर उचित निमित्त मिलते ही 'समझदार को इशारा ही काफी होता है' कि तर्ज पर पूर्वकाल के शुभ संस्कार जाग्रत होकर आत्मा को पुनः अध्यात्म यात्रा में आगे बढ़ाते है । किया हुआ धर्म कभी निष्फल नहीं जाता । शालिभद्रजी के प्रसंग में भी ऐसा ही हुआ है । ग्वाले के भव में खीर वहोराते सर्वस्व समर्पण का भाव आ गया , इसमें भी पूर्वभव की आराधना के संस्कार

काम कर गए । वो पूर्वभव में १२ व्रतधारी श्रावक थे ।

अजितसेन भी पूर्वभव से वैराग्य और त्याग के संस्कार लेकर आए है, पर पिछले भव के श्रीपाल के साथ वैरानुबंध के कारण श्रीपाल का राज्य ले लेते है । जान से मार देने के लिए युद्ध भी करते है । अजितसेन हार जाते है, पर श्रीपाल उनके बंधन छुड़वाकर राज्य लौटाते है । अब अजितसेन को गुणानुराग जागता है, पूर्वभव का वैराग्य जाग जाता है और वहीं युद्धभूमि में ही संयम का स्वीकार लेते है ।

अजितसेन हमे कह रहे है कि, धर्म आराधना करते रहो, शुद्धभाव से कर दृढ़ संस्कार ड़ालो, जो भवांतर में किसी कर्म के उदय से विकट स्थिति में से निकालकर मोक्षमार्ग में स्थापित कर देंगे ।

श्रीपाल ने भावपूर्वक नवपद आराधना की जिससे नौ का अंक फलीभूत हो गया ।

- मयणा वगैरह नौ रानियाँ
- त्रिभुवन आदि नौ पुत्र
- नौ हजार हाथी, नौ हजार रथ
- नौ लाख जातिवान घोड़े
- नौ करोड़ पैदल–सेना
- नौ सो वर्ष का आयुष्य
- नौंवे भव में मोक्ष

10. नवपद बनाए...भवाभिनंदी से आत्मानंदी

सिद्धचक्र की भावपूर्वक की गई आराधना परंपरा से तो मोक्ष दिलाती है, एक दिन की आराधना भी इहलौकिक आपत्तियों को दूर करती है । नौ दिन या जीवनभर की आराधना अनासक्त भाव की संपत्ति, वैभव देकर अनुक्रम से मोक्षमार्ग में आगे बढ़ाती है । यह बात श्रीपाल के दृष्टान्त से सहज ही समझ में आ जाती है । हम वर्षो से धर्म–आराधना, सिद्धचक्र आराधना करते है, पर परिणाम नहीं दिखता है, तो श्रीपाल को पहली बार में आराधना फली तो हमे क्यो नहीं फलती ? यह प्रश्न स्वाभाविक है ।

पंचसूत्रादि ग्रंथो में दो तरह की धर्मक्रिया बताई है–सबीज और निर्बीज । निर्बीज क्रिया वंध्या है, निष्फल है । अनेक भवो तक किए जाने वाले धर्मानुष्ठान में कितना संसार घटा, इसकी कोई निश्चितता नहीं, कोई गारण्टी नहीं, क्योकिं बीज ही नहीं है तो फल की आशा कैसे रखी जा सकती है ? धर्म आराधना, संयम, तपश्चर्या सब होती है, पर उसकी भूमिका में तत्वश्रद्धा मोक्षरुचि, संसार–निर्वेद आदि आवश्यक है, और ये आते है कर्मो की लघुता से, मंदता से । इस भूमिका के अभाव में चाहे जैसी कष्टदायी क्रियाएँ की जाएँ, उनसे पुण्यबंध जरुर होता है, पर आत्मशुद्धि का फल नहीं मिलता । उसे तो संसार ही अच्छा लगता है, संसार के भोगविलास के साधन ही अच्छे लगते है, ऐसे जीवों को भवाभिनंदी कहा जाता है ।

भवाभिनंदी यानि ? भव=संसार, अभि=तरफ, नंदन=आनदं यानि जिसे संसार के भावों के तरह ही रहने पर आनंद होता है ।

जीव ३ प्रकार के ।

भवाभिनंदी, पुद्गलानंदी, आत्मानंदी

(१) भवाभिनंदी को संसार ही अच्छा लगता है ।

(२) पुद्गलानंदी को संसार अच्छा नहीं लगता, पर मोहक पुद्गल सामने आते ही लुब्ध हो जाता है ।

(३) आत्मानंदी अपनी आत्मा में ही स्थिर होते है, पौद्गलिक भाव में नही फँसते ।

भवाभिनंदी जीव के आठ दूषण / लक्षण / चिह्न है । इन्हे समझकर इन्हे दूर करते की जरुरत है । जब तक ये दुर्गुण आत्मा पर जमे है, तब तक हमारी धर्मक्रियाएँ सबीज धर्मक्रिया नहीं बन सकती । उंबर में साहजिक रुप से ही ये दूषण नहीं है । उंबर भले कोढ़ी थे, सत्ता, संपत्ति, वैभव सब–चले गए पर उनका आत्म–वैभव अद्भुत था । आठो दुर्गुणो का अभाव और सद्गुणो का सद्भाव था । भूमिका की शुद्धि थी, इससे पहली बार की आराधना ही सबीज आराधना बनी ।

१) क्षुद्रता, (२) लाभरति, (३) दीनता, (४) मात्सर्य, (५) भय, (६) शठता, (७) अज्ञानता, (८) निष्फलारंभी. भवाभिनंदी के इन आठ दुर्गुणो को दूर करने, तोड़ने के लिए ही नवपद की आराधना है । एक–एक पद की आराधना से एक–एक दोष निकलने लगता है, आत्मगुण प्रगटते है और आत्मा दीप्त हो जाती है ।

उंबर राणा ने पूर्वभव में नवपद की आराधना से यह भूमिका पाई थी । उपादान की शुद्धि थी, जिससे आराधना प्रारंभ में ही खिलने लगी । नवपद के कौन से पद से कौन सा दोष टलता है और कौन सा गुण खिलता है, यह संक्षिप्त में देखते है –

नवपद	दोषहानि	गुणप्राप्ति
अरिहंत	क्षुद्रता	सर्वजीव मैत्री
सिद्ध	लाभरति	आत्मगुण रति
आचार्य	दीनता	खुमारी, शौर्यता
उपाध्याय	मात्सर्य	गुणानुराग
साधु	भय	निर्भयता
दर्शन	शठता	सरलता
ज्ञान	अज्ञानता	ज्ञान
चारित्र, तप	निष्फलारंभी	सफलारंभी

संक्षेप में इतना समझने के बाद दोषों का स्वरुप, नवपद–स्वरुप और श्रीपाल के सहज गुण–प्राप्ति का स्वरुप सोंचे –

१) **क्षुद्रता –** क्षुद्रता यानि तुच्छता, मात्र स्वार्थवृत्ति । अपनी स्वार्थ–सिद्धि की धूनवाला दूसरों के नुकसान या खुद को भी भवांतर में होने वाले नुकसान को दीर्घ या सूक्ष्म दृष्टि से देख ही नहीं सकता । उसे दूसरों का भला करने का भी विचार नहीं आता । कदाचित् विचार आ भी जाए, तो भी गहरे–गहरे भी स्वार्थ वृत्ति का ही पोषण होता है । हृदयमें माया खेलती हो और वर्तन में भी घुली होती है । इस क्षुद्रता के प्रभाव से आपप्रशंसा, माया, झूठ, परनिंदा आदि अनेक दुर्गुणो का पोषण करता है, इसमें ही आनंद मानता है । संसार बढ़ाता ही जाता है । वो जैसे जैसे पापकर्म से भारी होता है, वैसे वैसे उसे आनंद आता है । जीवन में कही उम्दावृत्ति, हृदयकी विशालता, परोपकार वृत्ति जैसे गुण देखने को नहीं मिलते ।

अरिहंत परमात्मा की आराधना से इन गुणों की प्राप्ति होती है । क्षुद्रवृत्ति विलीन हो जाती है । अरिहंत प्रभु के हृदय में सर्व जीवों से मैत्री, निःस्वार्थ परोपकार, हैरान–परेशान करने वालो के प्रति भी करुणा–भाव, दुश्मन के प्रति भी दुश्मनी नहीं, उल्टे उसके कल्याण की उदात्त भावना बसती है । ऐसे प्रभु की आराधना से हमारे हृदय में रही हुई तुच्छता, स्वार्थ भावना

पिघलने लगती है । कदाचित् किसी पापकर्म के उदय से भारी आफत आ गई हो तो हम भी दूसरों का नुकसान नहीं देख सकते । कहीं स्वार्थ भाव नहीं दिखता । दूसरो का भला करने की शक्ति नहीं भी हो, पर उसका दुःख कब दूर हो ? ऐसा भाव होता है । अरिहंत प्रभु की आराधना से उपादान शुद्धि हुई हो तो दोषहानि और गुणप्राप्ति होती है ।

एक कल्पना किजीए । बेटे के कमाने –धमाने का ठिकाना नहीं हो, उम्र हो गई हो, और आपकी इज्जत के प्रभाव से अच्छे घर की होशियार सुंदर लडकी का रिश्ता आए, तो क्या करेंगे ? आपके बेटे का काम निपट रहा है, पर सामने वाले की जिंदगी धूल–धानी हो रही है, ऐसी स्थिति में आप क्या करेंगे ? धर्म करना अलग बात है और धर्मी बनना अलग बात है । हम धर्मक्रिया से संतुष्ट हो जाते है, पर अंतर में धर्म कितना परिणत हुआ ? इसका विचार भी नहीं करते । **जैसे सूर्योदय होने से पहले प्रकाश होता है, ऐसे वास्तविक धर्म मिलने से पहले अंतर में गुण प्रकाश होता है । हृदय से क्षुद्रता चली जाती है, उदार और उदात्त भावना प्रकट होती है ।** यह उपादान शुद्धि का पहला पायदान है । नींव का गुण है । उंबर अपनी परिस्थिति के समकक्ष कन्या की खोज में थे और अप्सरा जैसी राजकन्या मिली । उंबर प्रजापाल को मना करते है, 'न घटे कंठे काग ने रे, मुक्ताफल तणी माला' कहकर अपनी जात को कैसा घोषित करते है ? इधर मयणा ने उंबर का हाथ पकड़ लिया । मयणा को आनंद है, सात सौ कोढ़ियो को आनंद है, पर उंबर का तेज फीका हो गया है । मेरे निमित्त इसका क्या होगा, यह चिंता खाए जा रही है । ठिकाने पहुँचने के बाद पूरी रात यही समझाते है कि, 'मयणा ! अभी भी समय है, अपना जीवन खत्म मत कर । यह रोग तुझे भी हो गया, तो तेरे सपने चूर–चूर हो जाएंगे । आराधक आत्मा उदात्त भावना वाला होता है, जीवन में कहीं क्षुद्रता, तुच्छ भाव नहीं होते, दूसरों का नुकसान न देख सकता है, न सह सकता है

अरिहंत परमात्मा की आराधना से क्षुद्रता दोष दूर होता है और मैत्री–गुण की प्राप्ति होती है । उंबर में क्षुद्रता का अभाव सहज रुप में

था । परचिंता, दुश्मन के प्रति भी मित्रता के उदात्त गुण थे ।

हमें भी अरिहंत परमात्मा के ध्यान, आराधना द्वारा प्रथम दोष क्षुद्रता को तिलांजलि देकर गुण–वैभव की वृद्धि करना है ।

अरिहंत की ध्यान साधना में एकाकार बनने से प्रभु के अनंतगुणों के साथ हमारी आत्मा का लय संबंध बंधता है । साधक आत्मा में अनुग्रह का स्त्रोत बहता है । अनंतजीवो में व्याप्त प्रभु की करुणा आत्मा के हर प्रदेश में व्यापक बनकर अंतर की अनादि मलिन वृत्तियों और तुच्छ स्वार्थ भावो को दूर कर परोपकार, वात्सल्य भाव और मैत्रीभाव आत्मा में जागृत करती है । परिणामतः शुरु में छोटी छोटी बातों को छोड़ देने की वृत्ति जागती है । अरिहंत के ध्यान–साधनादि के माध्यम से शुभभाव अधिकाधिक स्थिर होते जाते है, फिर विपरीत परिस्थिति में भी उपकार, मैत्री, समाधि टिकी रहती है । 'जिन उत्तम गुण गावता–ध्यावता गुण आवे निज अंग' यह पंक्ति चरितार्थ करें ।

(२) लाभरति – लाभ=पदार्थो की प्राप्ति, रति=आनंद । जैसे जैसे पुण्य के साथ पुद्‌गल–संपत्ति, वैभव, सोना, चांदी, जवाहरात आदि का लाभ होता है, वैसे–वैसे खुश होता है । अंतर में लोभदशा जागती है । संतोषी जीव उसे मूर्ख लगता है । पौद्‌गलिक भावों को ही सर्वस्व मानता है । एक ही महेनत और एक ही विचार 'ज्यादा और ज्यादा इकट्ठा करो और मजे करो । धन, माल में इतना आसक्ति भाव होता है कि वे प्राण से ज्यादा प्रिय बन जाते है । इसमें से मिलने वाली रति, आनंद, भवोभव भटकाते है । रात–दिन एक ही रटन 'इकट्ठा करो–इकट्ठा करो' । उसे सपने में भी विचार नहीं आता है कि यह सब यहीं छोड़कर जाना है । जैसे–जैसे संपत्ति के साधन मिलते जाते है वैसे–वैसे आनंद होता जाता है, यह लाभ–रति है । पौद्‌गलिक लाभ–रति के प्रभाव से संसार में भवभ्रमण चलता ही रहता है ।

यह दुर्गुण सिद्धपद की आराधना से टलता है । सिद्धपद की आराधना, ध्यान, चिंतन करे तो आत्मा के अनंत गुणो की ओर लक्ष्य जाता

है । अव्याबाध आनंद पहचान में आता है और सिद्ध परमात्मा के प्रभाव से आत्मगुण वैभव के दर्शन होते है । **जैसे अमृत पीने से चढा हुआ जहर उतरने लगता है, वैसे सिद्धपद की आराधना से आसक्ति भाव का मोह का जहर आत्मा से उतरने लगता है ।** कभी पुण्योदय से संपत्ति, वैभव, अतिशय बढ़ते जाते है, तो भी वो मेरे नहीं है, कर्म ने दिए है, इनका कभी भी वियोग हो सकता है, ऐसी संपत्ति का सदुपयोग करना चाहिए, ऐसा मानकर आत्मा को इन सबसे अलग रखता है । कदाचित् पुण्य की कमी से जीवन–निर्वाह योग्य सामग्री नहीं भी मिले, तो जो मिला उसमें चला लो, हाय–हाय करने की क्या जरुरत है, क्या साथ आएगा ? इन भावों से ओतप्रोत होता है । **आत्मानंद की ओर लक्ष्य होता है तो ये भावनाएँ आ जाती है ।** एक कल्पना किजीए, आपने पौषध किया है, आत्मा को पुष्ट करने वाली आराधना कर रात को घर आए है । छोटा पोता आकर आनंद से कहता है, 'दादा, दादा ! आज तो मैने एक साथ तीन सामायिक की । आप उसकी अनुमोदना करते है, उसे इनाम देते है । थोडी देर बाद बेटा घर आए और कहे, 'पिताजी ! आज व्यापारी से सौदे में २५लाख रुपये कमाए ।' अब आप सोचिए कि पोते ने पहली बार तीन सामायिक साथ में की और बेटे ने भी पहली बार २५ लाख कमाए, दोनो में से आनंद किसमें ? आप कहेंगे कि दोनो में । तो सोचिए की ज्यादा आनंद किसमें ? अंतर में अर्थवासना बैठी है, जिसके कारण लाभ–रति होती ही रहती है ।

श्रीपाल को सिद्धचक्र के प्रभाव से अपार संपत्ति मिली, परंतु मन उसमें कभी रहा नहीं, इस तरह सिद्धचक्रमय हो गए । लूँ–लूँ की भावना नहीं थीं। अप्सरा जैसी मयणा मिलने पर भी आनंद नहीं । अपना साम्राज्य पाने की इच्छा से कमाने निकले है । पहली ही रात में गिरिकंदरा में साधको का श्रीपाल के प्रभाव से विद्या सिद्ध–रससिद्ध होने पर वे उपकार की भावना से स्वर्ण देते है, पर वो नहीं स्वीकारते । साधको की महेनत का है, इसलिए नहीं लिया जाता, ऐसी भावना है । सिद्धचक्र के प्रभाव से श्रीपाल को कितना मिला इसकी गिनती करते है, पर जरुरत के समय श्रीपाल ने कितना छोड़ा

यह सोचा है ? स्वर्णसिद्धि भी छोड़ी, महाकाल राजा को जीतने से मिला राज्य भी छोड़ा । धवल इर्ष्यालु है, इसे व्यापार सौंपूगा तो 'अधिक भाव में खरीदा और कम भाव में बेचा' ऐसा बताएगा । नुकसान का पता है फिर भी चिंता किए बगैर प्रसंग-प्रसंग पर धवल को व्यापार सौंपते है । मेरे पुण्य में होगा तो क्या ले जाएगा ? यदि लाभ का आनंद, संपत्ति की आसक्ति हो तो यह कैसे हो सकता है ? **सिद्धपद की आराधना के माध्यम से लाभ-रति दुर्गुण छोड़ना है । ध्यान आराधना द्वारा सिद्धपद में लीन बनकर आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में रहे अनंत अव्याबाध आनंद की प्रतीति करना है ।** एकबार भी आत्मानंद की श्रद्धा होगी, प्रतीति होगी तो प्राप्त करने की रुचि होगी, यानि बाह्य पौद्‌गलिक पदार्थो में से मिलने वाला आनंद तुच्छ लगेगा । फिर चाहे जितने भोग-विलास के साधन मिले, अपार संपत्ति मिले । सिद्ध परमात्मा के अनुग्रह के प्रभाव से अंतर में आनंद रति नहीं होती । **संपत्ति-पदार्थ मिले पर उनका प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़े यह सिद्धपद की आराधना का फल है ।** ध्यान-साधना की इस भूमिका को सिद्ध कर भवाभिनंदिता का दूसरा दोष लाभ-रति टालना है ।

(३) दीनता – बात-बात में बुरा लगना, सदा रोते रहना । जो मिला है उसमें संतोष के बदले, जो नहीं मिला उसका आर्तध्यान करना । जो मिला है उसमें भी कमियाँ ही नजर आना । छोटी-बडी जैसी भी तकलीफ आए, और रोना-गाना शुरु, राई का पर्वत बनाए ऐसे जीव कभी भी और कहीं भी शांति नहीं पा सकते । कुत्ते की तरह दीन बनकर मांग-मांग करने में कोई शर्म नहीं आती । दीन देव-गुरु-धर्म को तो भूलता ही है, साथ में जाति, सम्मान भी भूल जाता है । मैं अकेला हुँ, मेरा कोई नहीं है, मेरा कोई सुनता नहीं है, महेनत करता हुँ पर कुछ मिलता ही नहीं । सब हैरान, परेशान करते है । कहाँ जाऊँ ? क्या करुं ? इन विचारो में ही समय गुमाता है । ऐसी दीनता का दास धर्मआराधना तो नहीं कर सकता, व्यवहार भी अच्छी तरह नहीं निभा सकता । **दीनता से सत्व नष्ट होने लगता है, आत्मविश्वास टूटता जाता है, विकल्पो की पंक्ति लग जाती है, परंपरा से दीनता बढ़ती जाती है ।** इस

दीनता–दोष को हटाने के लिए शौर्यभाव, खुमारी चाहिए । जो भी परिस्थिति आए, उसे हँसते मुख से स्वीकारे, कभी अकेलापन महसूस नहीं करे । संसार का स्वरुप सोचे कि, संसार दुःखमय है तो सुख कहाँ से मिलेगा ? ऐसा सोंचे कि जो संयोग मिले है उनका उपयोग कर आत्मसाधना करनी है, **ऐसी खुमारी वाला हंमेशा आर्त्तध्यान से मुक्त रहता है ।**

आचार्यपद की आराधना से जीवन में खुमारी, शौर्यता आती है । शासन की धुरा वहन करनेवाले आचार्यपद का ध्यान पीले वर्ण से करना है । पीला वर्ण शूरवीरता का प्रतीक है । आचार्य भगवंत दीनतारहित संयम साधनापूर्वक, शूरवीर बनकर शासन पर आने वाली आपत्तियों का सामना करते है । जीवन में कई छोटी–मोटी समस्याएँ रोगादि आपत्तियाँ आती है, ऐसे समय वो आर्त्तध्यान में नही डूबते है । परिस्थिति को दुःख रहित स्वीकारते है । वो समझते है कि कर्मोदय है, ऐसे समय में जो भी हो सकता हो, वो कार्य–आराधना कर लेनी चाहिए । श्रीपाल किससे उंबर राणा बने ? पुण्य का पासा पलटा तो सब चला गया । सत्ता, संपत्ति, वैभव, परिवार सबसे जुदा हो गए । शरीर में कोढ़ रोग हो गया, माँ भी बिछुड़ गई, पर मैं अकेला हूँ, सारे पड़ोसी मेरा तिरस्कार करते हैं, ऐसा विचार भी नहीं करते । सात सौ कोढ़ियों के समूह में घूमते है । उन्हे राणा बनाया है, सब रानी की खोज में है । कितने ही राज्यों में घूम आए है, उंबर ने कहीं दीनता नहीं दिखाई । 'मैं राजपुत्र हूँ, सब चला गया है, काका रक्षक के बदले भक्षक बन गए । आप मुझे राजकन्या दीजिए' । ऐसा कुछ नहीं बोलते, कहीं अपनी पहचान नहीं बताते । जो परिस्थिति है उसे स्वीकारने का शौर्य उंबर में दिखाई देता है । पिताजी का राज्य प्राप्त करने का अवसर आया तब अपने बाहुबल से ही लेने की खुमारी के साथ संपत्ति पाने के लिए अकेले ही धनोपार्जन करने निकले । सत्व और शौर्य उनके जीवन–प्राण थे । दो–दो बार उनकी नजर के सामने सब कुछ चला गया । (१) काका ने राज्य छीन लिया, जंगल में भटके, कोढ़ी बने । (२) धवल ने श्रीपाल की संपत्ति, स्त्रियाँ हथियाने के लिए श्रीपाल को समुद्र में ड़ाल दिया, तो भी दोनो प्रसंगो में किसी

भी तरह की हाय–हाय नहीं की । अब मैं क्या करुंगा ? ऐसा विचार भी नहीं आया । दरिये में धक्का दिया तब तो मौत सामने दिख रही है, संपत्ति, पत्नियाँ छूट गए तो भी मुँह से 'णमो अरिहंताणं' ही निकलता है । ऐसी स्थिति हमारी आए तो, हमारे मुँह से क्या निकलेगा ? पुण्य चले जाने पर संपत्ति, वैभव चले जाएँ या बाप–दादा की मिलकत चली जाएँ, तो पूर्व–कालीन श्रीमंतता के गीत दूसरों के आगे कितनी बार गाते है ? यह सब दीनता है । किसी न किसी कर्म के उदय से शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, व्यापारिक या आर्थिक उपाधि, तकलीफें आती रहती है । ऐसी स्थिति में उंबर–श्रीपाल का आलंबन लेकर आचार्यपद की आराधना–ध्यान के प्रभाव से इस दीनता को बिदा करना है । दीनता जाए, खुमारी प्रगटे और आत्मगुणों का वैभव दिखाई दे । आर्त्तध्यान से मुक्त बने । परमपद की यात्रा प्रारम्भ हो ।

४) मात्सर्य (ईर्ष्या)– भवाभिनंदी का चौथा दुर्गुण है मात्सर्य...मात्सर्य यानि ईर्ष्या...असहनशीलता । दूसरो का अच्छा देखकर मुँह बिगड़े, जलन हो कि मुझसे ज्यादा उसे क्यो मिला । फिर वह संपत्ति हो, इज्जत हो, ज्ञान हो या तप हो । मात्सर्य से कदाचित् अन्य को नुकसान हो, या नहीं हो, पर अंतर–आत्मा को तो मात्सर्य जला ही देता है । क्रोध भी आत्मा को जला देता है, पर उस क्रोध की आग को सब देख सकते है । वो बाहर की आग है, तो ईर्ष्या–मात्सर्य अंदर की आग है। बाहर से तो शांत लगता है परंतु स्वयं ही अपनी आत्मा को जलाता है । अपने से कोई आगे नहीं आना चाहिए । दूसरो को हीन बनाकर खुद के आगे बढ़ने की दुष्ट भावना आत्मा को भयंकर कर्म बंधन करवाकर दुर्गति के द्वार खुलवा देती है । अनंत–शक्ति और अव्याबाध सुख के स्वामी आत्मा को कौन सी भूमिका खटकती है ? समाज में किसी को पुण्योदय से हम से अच्छी सामग्री मिल जाए, तो हमें कौन सा विचार आता है ! अरे !...यह मुझसे आगे निकल गया है, अब इसे पीछे कैसे करुं ? मैं कैसे आगे निकलूँ ?

आत्मकल्याण के लिए सर्वत्याग कर साधना करने वाले साधकों को भी यह दोष नहीं छोड़ता, इसके लिए सिंहगुफावासी मुनि का दृष्टांत पर्याप्त है । इस मत्सर दोष के प्रभाव से उच्च साधना करनेवाले जीव भी संसार में भटकते है, इसलिए मुमुक्षु आत्मा को इस दोष को तिलांजलि देना जरुरी है ।

इस दोष से मुक्ति के लिए शास्त्रकार भगवंत उपाध्याय पद की आराधना का निर्देश करते हैं। उपाध्याय भगवान का कार्य है अध्ययन–अध्यापन । साधुओ को पढ़ाते है, वात्सल्य देते है, उपबृंहणा करते–करते कर्म की विचित्रता से आर्त्तध्यान के शिकंजे में जकडाएँ हुएँ आत्माओ को समझाकर, प्रेम–वात्सल्य में भीगे शब्दो से शांत कर देते है । उन्हें संयम और अभ्यास में स्थिर करते है । छोटे–छोटे साधु अपने से आगे निकले, यही भावना रखते है । गुणानुराग में ही खेलते रहने से अपनी शक्ति से भी ज्यादा शिष्यो की शक्ति प्रगट करने का काम उपाध्याय भगवंत करते है । जीवन में कहीं ईर्ष्या, मत्सर, असूया का नाम नहीं । जैसे–जैसे साधु अपने से आगे बढ़ते दिखे, वैसे वैसे आनंद में डूबते जाते है । ये गुणानुरागी के लक्षण है । **उपाध्याय भगवंत की आराधना, जाप, ध्यान, साधना से अंतर में जमा हुआ मात्सर्य भाव पिघलता है और गुणानुराग में परिवर्तित होता है और दिनोदिन वृद्धि पाता है ।** अपने छोटे भी शिष्य को आगे बढ़ते देख उपाध्याय भगवान को जैसे गुणानुराग होता है, वैसे हमारे जीवन में भी दूसरो के प्रति गुणानुराग प्रगट होता है और परसुकृत अनुमोदना का झरना अंतर में बहने लगता है, फिर जीवन कितना शांत, निर्मल, निर्दोष और आनंदमय बन जाता है !

श्रीपाल के जीवन में कहीं असूया, ईर्ष्या नहीं है । अपना सब चला गया । सत्ता, संपत्ति, परिवार कुछ नहीं रहा, ऐसी अवस्था में भी औरों को देखकर ईर्ष्या नहीं होती । हृदय में मात्सर्य नहीं है । श्रीपाल की स्थिति देखकर धवल को ईर्ष्या होती है । सब लेने की साजिश रचता है । धवल की खराब नियत की जानकारी होने पर भी श्रीपाल को कभी धवल से नफरत नहीं हुई उल्टे यही सोचा कि धवल मुझे अपने जहाज (किराया लेकर भी) में लाए तो मुझे यह सब मिला । धवल मेरे उपकारी है, ऐसा श्रीपाल अंत तक

मानते है । अजितसेन काका ने बाल्यावस्था में राज्य छीन लिया, लौटाते भी नहीं है, श्रीपाल को जान से मारने के लिए युद्ध में स्वयं आते है, तो भी श्रीपाल कहते है कि, आपका उपकार है कि आपने मेरा राज्य सम्हाला, यह गुणानुराग दृष्टि है । उपाध्याय पद की आराधना–ध्यान द्वारा गुणानुराग दृष्टि विकसित कर, मत्सर दुर्गुण दूर करने का प्रयत्न करता है ।

(५) भय – दुर्ध्यान का प्रबल कारण भय है । भयभीत इंसान कुछ भी नहीं कर सकता, सतत चिंताग्रस्त ही रहता है । महेनत करे, फल नहीं मिले तो भय–चिंता, मिला हुआ सब चले जाने का भय, कोई परेशान नहीं करे इसका भय, मृत्यु भय, इहलौकिक आदि सात भय शास्त्रो में बताएँ है । भय के कारण नई–नई कल्पनाएँ करके दुःखी होता जीव जीवन को खुद ही कठिन बना देता है । जरा भी कमी, आपत्ति, तकलीफ नहीं आए, इसके भय में सुख–शांति गँवा बैठता है ।

भय के कारण अनेक योजनाएँ बनाता है, जिसमें भरपूर असत्य, प्रपंच, कषाय काम करते है, कभी–कभी रौद्रध्यान होने की संभावना है, ऐसे में आयुष्य बंध हो जाए, तो मर कर नरकादि दुर्गति में जाना पडता है और आगे अनेक भवो में भटकना पडता है । ।

इस भय को दूर करने के लिए साधु पद की आराधना है । साधु को कोई भय नहीं होता । न जीने का, न मरने का । परिषह, उपसर्ग, उपद्रव आऐ तो उनका भय नहीं, क्योकि शरीर को अपना माना नही है, सहन करेंगे तो सिद्ध बनेंगे । साधना करे वो साधु, सहन करे वो साधु । **'देह में से मुक्ति–मंजिल की ओर आगे बढो'** यह सिद्धान्त रुढ हो गया है । साधु हंमेशा निर्भय भाव में रमण करता है । **आत्मानंद की मस्ती में मस्त हो उसे किसका भय ? परभाव में जाते है तो ही सब भय पैदा होते है ।** पराई वस्तु को अपना माने तो चली जाने का भय होता है । कर्म द्वारा दी गई वस्तु को साधु अपनी नहीं मानते । साधु कर्म को कह देता है कि तू चमड़ी उतारने आए या घाणी में पीले, सिर पर चमड़े का पट्टा बांधे या अंगारे रखे, मैं तो सर्वत्र निर्भय हूँ,

शरीर का चाहे जो हो, आत्मा का तो फायदा ही फायदा है, कर्म की निर्जरा हो रही है । असाधक आत्मा को छोटी भी तकलीफ आएँ तो व्याकुल हो जाता है, जबकि साधक साधु को चाहे जितनी तकलीफ आए तो भी आत्मा की मस्ती में आनंद मनाते है । साधु पद की आराधना से ऐसी अवस्था प्राप्त होती है । श्रीपाल को पूर्वभव की आराधना के प्रभाव से जीवन में कही भय नहीं है । सामान्य रुप से सोचे तो श्रीपाल के जीवन में भय के निमित्त कितने सारे मिले, तो भी सर्वत्र निर्भय । धर्म–सिद्धचक्रजी मिलने से पहले और बाद में भी श्रीपाल निर्भय है । सत्ता, संपत्ति, परिवार सब चला गया, तो भी कोई चिंता नहीं । वर्तमान में ही जीव को आनंद पाना है । संपत्ति पाने अकेले निकले है । धवल के सैनिक पकड़ने आए हो या शीकोतरी को भगाना हो, महाकाल राजा से लड़ना हो या स्वयंवर के समय राजाओं या राजकुमारो से लड़ना हो, कहीं ड़र नहीं है । मैं क्या करुंगा ? मेरा क्या होगा ? ऐसा कोई विचार नहीं है । धवल दरिये में फेंकता है, मृत्यु सामने खड़ी है, तो भी अरिहंत का स्मरण करते है, पत्नि, संपत्ति की जरा भी परवाह नहीं करते । निर्भयता से चित्त–समाधि की भूमिका प्राप्त होती है, जबकि भय सतत चिंता करवाता है, मन में बेचैनी रहती है । भय संक्लिष्ट परिणाम को अति संक्लिष्ट करता है । निर्भयता मोक्ष–मार्ग को सरल कर देती है । भवाभिनंदी के लक्षण स्वरुप भय जाग्रत होगा तब तक मोक्ष–साधना में ड़ग भी नहीं भरा जा सकता । साधुपद की आराधना, ध्यान, वैयावच्च भक्ति के माध्यम से इस दोष को टालने का प्रयत्न करता है ।

(६) शठता – शठता यानि माया, लुच्चाई, स्वभाव से वक्र, कपटी बात–बात में लोगों को ठगने की ही बात । विश्वासघात करते भी देर नहीं, अफसोस भी नहीं । यह पाप करते जगत में दिखे भी नहीं और बहुत होशियार है ऐसा लोगो में दिखे । कोई लेना–देना भी नहीं हो तो भी स्वभाव से ही वक्र बुद्धि सूझती है । आडे–टेढ़े कार्य करता है । स्वार्थ के पोषण में उलटा सीधा करता है। सरलता नहीं होती । कोई समझाएँ तो भी समझता नहीं हैं । ये सब भवाभिनंदिता के लक्षण है । अनंतकाल से आत्मा में उल्टी चाल की

आंटियाँ पड़ चुकी है, वो सीधी होती ही नहीं है । संसार चलता ही रहता है । इस दोष को हटाने के लिए दर्शनपद की आराधना का सूचन किया गया है । **सम्यग्दर्शन से मोहनीय कर्म फीका पड़ जाता है, तत्वज्ञान का भान होता है, विवेक दृष्टि खीलती है । जीवन में सरलता आती है, यथोचित प्रवृत्ति करने की सूझ होती है । अपनी भूल दिखाई देती है । कर्म–लघुता हो जाने से अंतर–प्रकाश खिलता है । यह सम्यग्दर्शन की भूमिका है ।**

उंबर राणा को सिद्धचक्र की आराधना फली, उसमें सरलता का ज्यादा महत्व रहा है । माया–प्रपंच उनके जीवन में कही नहीं था, सरलता ही नहीं, अति सरलता थी । भले वो कन्या की शोध हो, धवल के साथ का व्यवहार हो, महाकाल राजा का संबंध हो या अजितसेन राजा से राज्य वापिस लेने की बात हो पर हर जगह सरलता । उंबर–श्रीपाल की सरलता भी नम्रता और विनय युक्त थी । मायावी, वक्रस्वभावी, और शठ व्यक्तियो के साथ भी उनकी सरलता अखंड़ित रहती थी । दुर्जन व्यक्तियो का संसर्ग होने पर भी कहीं भी दोष का कीचड़ उन्हे स्पर्श भी नहीं कर सका । श्रीपाल इन परिस्थितियों में सदा जलकमलवत् रहे है ।

श्रीपाल का आलंबन लेकर सम्यग्दर्शन पद की आराधना से हमारे मिथ्यात्व को गलाकर जीवन में से शठता ढूँढ–ढूँढ कर जीवन में सरलता गुण की स्थापना प्राप्ति का संकल्प आज से करना है ।

(७) अज्ञानता – अज्ञानता यानि ज्ञान का अभाव या विपरीत बुद्धि । ज्ञान ही नहीं होना या रहस्य का भान नहीं होना, अज्ञानता है । अज्ञानता के कारण जीव जहाँ–तहाँ भटकता है । **अंधा व्यक्ति या जिसकी आँखो पर पट्टी बंधी है, दोनो चले तो टकराते–गिरते जाते है । अज्ञानी जीव को सत्यासत्य का भान नहीं होता, परिणामतः संसार में घूमता रहता है ।**

अज्ञानी जीव दो प्रकार के होते है, (१) जिन्हे कुछ आता ही नहीं है, (२) आता ही नहीं है तो भी यह नहीं मानते कि नहीं आता है, या खुद ने जो माना है वह आत्मा के लिए हितकारी है या नहीं ? यह नहीं सोचे यह सब

अज्ञानता है । ज्ञानपद की आराधना इस दोष को नाबूद करती है ।

ज्ञानपद की आराधना से अज्ञानता का नाश होता है, जो भी ज्ञान प्राप्त करते है, उसके मर्म–रहस्य तक पहूँच सकते है । आत्मविश्वास का सही रास्ता मिलता है, तत्व–रुचि प्रकट होती है । अष्ट–प्रवचन माता जितना अल्प ज्ञानी भी तत्व–रुचि आत्म–प्रतीति कराकर आत्मा के अनंत सुख प्राप्ति के मार्ग की ओर प्रयाण कराता है । **अहंभाव अपनी मान्यता को ही सही मनवाता है,** जानकारी नहीं हो तो भी सब जानता हूँ, ऐसा दिखावा करना यह भ्रमणा ही बड़ा अज्ञान है । श्रीपाल में ऐसी अज्ञानता नहीं थी ।

श्रीपाल, श्री मुनिचंद्रसूरीश्वरजी महाराज द्वारा दी गई सिद्धचक्र यंत्र की आराधन विधि नहीं जानते तो पूज्य आचार्यदेव से समझते है और मयणा से सीखते है । खुद को आता है, सब समझ गए, ऐसा दिखावा नहीं करते, सरल भाव से सीखने के लिए तैयार हो जाते है । पत्नि से सीखूँ ? ऐसा कोई अहं भाव बीच में नहीं आता । उंबर राणा यहाँ कहते है कि, **यदि आपको धर्म–क्रिया नहीं आती हो तो सिद्धांत और प्रयोग सीखो । नहीं आता हो तो आने का दावा मत करो । आराधना–धर्मक्रिया के तत्व तक पहुँचो । जो भी योग्य व्यक्ति मिले, उससे सीखने पढ़ने की तैयारी रखनी चाहिए ।**

समझ और ज्ञानरुपी प्रकाश आएगा, तो अंतर में पड़ा अज्ञान का अंधियारा दूर होगा । आत्म प्रकाश में हेयोपादेय का भान होगा और मोक्षमार्ग साधना सरल बनेगी । श्रीपाल के आलंबन से ज्ञानपद की आराधना द्वारा संसार में भटकाने वाला 'भवाभिनंदी' का 'अज्ञानता' नाम का दुर्गुण दूर करने के लिए प्रयत्नशील बनना है ।

(८) निष्फलारंभी – निष्फल यानि फल बिना का हित–सार, फायदा रहित निष्फल बने ऐसे ही कार्य करना अच्छा लगता है या ऐसे ही कार्य उसके हाथ से होते है । जो कार्य करे वो उल्टे ही पड़े, कभी सीधे नही उतरे । शुरुआत में सफलता दिखती भी है पर परिणाम निष्फल हो, दीर्घदृष्टि नहीं हो, लम्बा सोचने की आदत नहीं हो । कोई समझाए तो समझने के लिए, सुधरने के

लिए तैयार ही नहीं हो । एकाध बार निष्फल हो जाए तो भी ऐसे कार्यो में दुगुने उत्साह से आगे बढ़ता है । हारा हुँआ जुआरी दुगुने उत्साह से खेलता है, ऐसी स्थिति निर्मित हो उसका ऐसा ही कार्य होता है । बुद्धि भी ऐसी ही होती है जो निष्फलता के मार्ग पर ले जाए, ऐसे कार्यों में ही उद्यम करने में उसे मजा आता है, पर अंत में तो पश्चात्ताप और नुकसान ही होता है ।

पदार्थ प्राप्त करने की सतत इच्छा यानि आर्त्तध्यान प्राप्ति के लिए आरंभ–समारंभ में डूबे रहना वो आर्त्तध्यान, निष्फलता मिले और दुःखी दुःखी हो जाए वो आर्त्तध्यान, फायदा होगा इसके विचार मात्र से होने वाला आनंद वो आर्त्तध्यान, अलग–अलग योजनाएँ बनाने का आर्त्तध्यान, बार–बार वही प्रवृत्ति करने के लिए मन दोड़ै वो आर्त्तध्यान, मिला हुआ चला जाए तो महा आर्त्तध्यान । आर्त्तध्यान की इस परंपरा में कर्मबंध कर, भवो की परंपरा बढ़ाता ही जाता है । भवाभिनंदी जीवो की कैसी स्थिति है ?

भाग्ययोग से प्रभु का शासन मिले, चारित्रधर्म और तपधर्म का आराधन करे तो निष्फलता के योग टूटे, आर्त्तध्यान कम हो ।

चारित्र की आराधना से नए बंधने वाले कर्मो (आश्रव) के प्रति अरुचि होती है । कदाचित् तीव्र कर्म के उदय से प्रवृत्ति भले नहीं बदलाए, तो भी आराधना के प्रभाव से परिणति तो बदलती ही है । ७० भेद की आराधना अंतर में निर्वेद भाव पैदा करती है । फिर संसार की प्रवृत्ति करने के बावजूद रुचि मंद पड जाती है, इससे निर्ध्वंसता कम हो जाती है ।

तपधर्म की आराधना से पूर्वबद्ध कर्मो का भान होता है, प्रतीति होती है फिर तपधर्म द्वारा तोड़ने के लिए प्रयत्नशील बनता है ।

चारित्र और तप पद के प्रभाव से पूर्वकृत मोहदशा की मंदता के प्रभाव से गलत पकड़ से मुक्त बनकर सत्यमार्ग की ओर गति करते है । किसी की सत्य बात भी गले उतरने लगती है इससे निष्फल प्रवृत्ति से निवृत्त होकर सफल प्रवृत्ति का आदर करता है ।

श्रीपाल ने निष्फल प्रवृत्ति कभी नहीं की, क्योंकि इसमें श्रम–समय और संपत्ति का ही व्यय है और अंत में दु:खी होने का ही अवसर आता है । वो समझते थे कि युवावस्था होने के बाद भी जब तक सामर्थ्य नहीं आया तब तक अपना राज्य पाने का प्रयत्न तो ठीक है, विचार भी करने जैसा नहीं है । कदाचित् भाग्य योग से राज्य मिल भी जाए तो भी कोढ़ी अवस्था में राज्य संचालन करना ठीक नहीं है । इससे राज्य–प्राप्ति की गहरी गहरी इच्छा होते हुए भी उन्हे तत्काल राज्य लेने का विचार भी नहीं आता ।

श्रीपाल कन्या की खोज में घूम रहे है, पर कहीं भी राजकुमारी की मांग नहीं की । समझते है कि इसमें निष्फलता ही मिलने वाली है तो क्यूं ऐसी प्रवृत्ति करुँ ? मैं राजकुमार हूँ, राजा हूँ, तो मुझे राजकुमारी ही मिलनी चाहिए, ऐसी जिद नहीं रखी लेकिन स्थिति योग्य प्रवृत्ति ही की । बाद में भले पुण्य योग से मयणा मिली मगर उनकी प्रवृत्ति परिस्थिति अनुरुप थी, निष्फलता मिले ऐसी नहीं थी ।

श्रीपाल के इन प्रसंगो को ध्यान में रखकर चारित्र पद और तप पद की आराधना द्वारा निष्फलारंभी की वृत्ति रुप भवाभिनंदी का दोष टालने का प्रयत्न करना है ।

उपसंहार – भवाभिनंदी के आठ दुर्गुण–दोष भवभ्रमण का कारण है । ये जब तक दूर नहीं होंगे तब तक धर्म क्रिया सबीज नहीं हो सकती और आत्म–कल्याण का मार्ग नहीं मिल सकता । नवपद–आराधना इन्हें दूर करने का श्रेष्ठ उपाय है । एक–एक पद की आराधना से भवाभिनंदी का एक–एक दोष दूर होता है । हमारे जीवन में जिस दोष का प्रभाव दिखता है उस पद की विशिष्ट आराधना रुप तप–जप–कायोत्सर्ग–ध्यान के माध्यम से द्रव्य–भाव आराधना द्वारा इन्हें दूर करने का प्रयत्न करना है ।

भवाभिनंदी, पुद्गलानंदी और आत्मानंदी इन तीन प्रकार के जीवों की भूमिका में से हमारी भूमिका कौन सी है, इसका अंतर निरीक्षण करना जरुरी है । आत्मानंदी की भूमिका पाने के लिए कटिबद्ध बनने में ही सिद्धचक्र की आराधना की सफलता है ।

11. परिशिष्ट – १
पूजनो में मंडल आलेखन (मांडला) रहस्यमय एक अनुचिंतन

जिनशासन में प्रभु भक्ति के अनेक मार्गों में वर्तमान काल में सिद्धचक्रादि पूजनों की प्रधानता बढ़ रही है। इन पूजनो में विधि–शुद्धि का ध्यान रखा जाए तो वर्तमान में भी शांति और पौष्टिक दोनो तरह से अनुष्ठान फलता है । पिछले ५0 वर्षों में, उसमें भी अंतिम २0 वर्षो से पूजन पढ़ाने का प्रवाह बढ़ता जा रहा है । इन पूजनो में कई बातो पर विचार किया गया है ।

आज अधिकतर पूजनों में मांडले का आलेखन भूमि–तल पर ही हो रहा है, जिसमें शासन के धर्म के मूल समान विनय गुण का अभाव दिखाई दे रहा है । 'पूज्य वस्तु को नाभि से उपर रखना चाहिए' यह विनय धर्म है, और मांडला नीचे बनाने से विनय लुप्त होता है ।

इसके उपरांत सिद्धचक्र पूजन का मूल 'सिरि सिरिवाल कहा' नाम का ग्रंथ है । श्रीपाल महाराजा साढ़े चार वर्ष सिद्धचक्र की आराधना कर उद्यापन करते है और विस्तार से सिद्धचक्र पूजन पढ़ाते है । इसका सुंदर विशद वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है, इस संबंध में श्रीपालने विशिष्ट पीठिका बनवाई, उसे विविध रंगो से रंगकर उस पर पंच धान्य से मांडला बनाया है..

कत्थपि विच्छिन्ने जिणहरंमि काऊ तिवेट्ठयं पीढं,
विच्छिणं वर कुट्टिमधवलं नवरंग कयं चित्तं ।।१९८२।।

— सिरि सिरिवाल कहा

अर्थ — विशाल जिन चैत्यों की श्रेष्ठ भूमि में तीन वेदिकावाली पीठिका बनाकर, विविध रंगो से रंगकर उस पर अभिमंत्रित शाली आदि पंचधान्य से सिद्धचक्र का मांडला आलेखन करना ।

त्रिवेदिका वाली पीठिका यानि हेमकुंड में जैसे तीन सीढ़ियाँ होती है, वैसे यह पीठिका १–१ ईंट अर्थात् ३–३ इंच की सीढ़ियों वाली बनाई जा सकती है । पीठिका पर मांडला बनाने का स्पष्ट पाठ होने पर भी अज्ञानता के कारण लगभग सब जगह पूजनों के मांडले नीचे भूमि पर ही बन रहे है । पूजन करवाने वाले तो अनजान होते है । निश्रादाता पू. गुरुदेवश्री और क्रियाकारक के प्रति पूर्ण विश्वास रखकर श्रद्धानुभाव से भावुक पूजन पढ़ाते है, तो ऐसे समय में पाप के भागीदार कौन ?

कच्ची ईंट की पीठिका बनाकर मांडला बनाना सर्वश्रेष्ठ है, कभी ऐसी अनुकूलता नहीं हो तो अंत में छोटी पाट पर (५/९ ऊँची) मांडला बनाया जाए तो विनय धर्म का पालन हो सकता है ।

'मांडला तो नीचे ही बनाना चाहिए' ऐसी दलील करने वाले कुछ अनजान क्रियाकारक सिद्धचक्र की दूसरी चौवीसी में आनेवाले 'भूमंडले' शब्द की साक्षी देते है, लेकिन भूमंडले का अर्थ 'भूमि का तल' ऐसा होता ही नहीं है ।

मंत्रविद् पूज्यपाद पंन्यास प्रवर गुरुदेव श्री अभयसागरजी म.सा को मैने, गृहस्थ अवस्था में 'भूमंडले' शब्द बताकर भूमि पर मांडला बनाने की बात कही, तब पूज्यश्री ने बताया कि इस शब्द का अर्थ शब्द शास्त्र के आधार पर नही करना है, क्योंकि यह मंत्रशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है । गुरुदेवश्री के इस शब्द का रहस्य तो उस समय समझ नहीं आया पर दीक्षा के बाद संस्कृत का अभ्यास किया और ग्रंथो का वांचन हुआ, तब पता चला कि

'भूमंडले' शब्द का अर्थ मंत्रशास्त्र में एकदम भिन्न होता है । पूज्यश्री द्वारा बताई गई बात तब एकदम सत्य लगी ।

'अनुभव सिद्धांत द्वात्रिंशिका' ग्रंथ की प्रस्तावना में बताए अनुसार मंत्र शास्त्र में जुदे जुदे आकारो और बीजाक्षरो के माध्यम से चार मंडलो की रचना होती है । पृथ्वी मंडल, जलमंडल, अग्निमंडल, वायु मंडल । उनमें हरेक मंडल के आकार और बीज निम्नानुसार है –

मंडलका नाम	वर्ण	आकार	बीज मंत्र	दीशामें
१) पृथ्वी मंडल	पीला	चतुष्कोण	लं, क्षिं	चारो दिशा में लिखना
२) जल मंडल	सफेद	कलश समान गोल	वं, पं	चारो दिशा में लिखना
३) अग्नि मंडल	लाल	त्रिकोण	रं, ॐ	चारो दिशा में लिखना
४) वायु मंडल	काला	गोलाकार	यं, स्वा	चारो दिशा में लिखना

सिद्धचक्र यंत्र पृथ्वी मंडल का यंत्र है, इस रचना का उद्भव चार सीधी रेखाओं के बाहर निकलते सिरे वाला चौकोर बनाकर उसके सिरे पर बीजमंत्र लँ और रेखाओं के बीच क्षिं लिखने से होता है ।

मंत्रशास्त्र में आकार और बीजमंत्रो के माध्यम से उपर्युक्त चार प्रकार के मंडल बनते है, उनमें से भू–पृथ्वी, पृथ्वी मंडल में यह सिद्धचक्र यंत्र और मंडल आलेखन का विधान है । भूमंडल शब्द का अर्थ 'भूमि का तल' किया जाए तो मंत्रशास्त्र पारंगत पू.आ.देवश्री सिंहतिलकसूरीश्वरजी म.सा.ने वर्धमान विद्या कल्प में जो श्लोक बताया है वह समझने जैसा है – भूमण्डलेन वेष्टयेत् इदं यत्र विधिः पूर्णा । इदं विधि पूर्णा

अर्थ – पृथ्वी मंडल से वेष्टित इस यंत्र की विधि पूर्ण हुई । (भूमंडल–वेष्टन यानि यंत्र के चारो ओर एक दूसरे के सिरे पार करती हुई चार रेखाएँ बनाकर कानो में लं और चार दिशा में 'क्षीं' बीज मंत्र की स्थापना करना । मंत्रशास्त्र में इस प्रक्रिया को 'भूमंडल–वेष्टन' कहा जाता है ।

यदि 'भूमि के तल पर ही मंडल करना' ऐसा भूमंडल शब्द का अर्थ

होता है तो आचार्यश्री भूमंडल से वेष्टित करने का नही कहते । जैसे वर्धमान विद्यायंत्र को पृथ्वी मंडल से वेष्टित करने के लिए कहा गया है, उसी अर्थ में 'भूमंडले' शब्द द्वारा सप्तमी विभक्ति का उपयोग कर सिद्धचक्र को पृथ्वी मंडल से वेष्टित करने के लिए कहा गया है । सप्तमी विभक्ति का अर्थ आधार अर्थ में भी होता है ।

मंत्रशास्त्र में बताए गए पृथ्वी मंडल में सिद्धचक्र यंत्र आलेखन का स्पष्ट निर्देश किया गया है, तो भी मात्र शब्द शास्त्र के अर्थ से प्रेरित होकर आज पूजनो में मांडला नीचे बनाकर सर्वत्र अविधि हो रही है । इसमें विनय धर्म का खंडन हो रहा है ।

अभिमंत्रित पंचधान्य से बनाए मांडले को अभिमंत्रित कर (वासक्षेप से जाग्रत कर) उसका पूजन होता है, इससे वो भी पूज्य बनता है । पूजन में पूजक, पूजा में उपस्थित रहनेवाले आसन या जाजम (दरी) पर बैठते है, कभी–कभी क्रियाकारक या विधिकारक पाटले पर भी बैठते है, तो पूज्य से पूजक उपर बैठे तो विनय का पालन कैसे हो सकता है ?

विनयधर्म का पालन हो और विधिपूर्वक पूजन पढाई जाए, ऐसे शुभ आशय से यह अनुचिंतन लिखा गया है । शासन की एक महत्तम क्रिया शुद्ध बने, ऐसे भावो के साथ विराम लेता हुँ ।

।। विणय मूलो धम्मो ।।

विनय धर्म का मूल है । इसलिए पूजन का आयोजन करो तो पूज्यभाव, अहोभाव और विनयमर्यादा के पालन के साथ करो ।

मांडला पीठीका के उपर ही बनाना है ।

मांडले का आलेखन जमीन पर करना अविनय है...आशातना है...अनादर है ।

12. परिशिष्ट – २
पूजन अखंड कब बने ?
(पूजन निश्चित करते समय अमल करने योग्य लेख)

तारक परमात्मा की विशिष्ट भक्ति स्वरुप सिद्धचक्रादि अनेक पूजन भावभक्तिपूर्वक हो रहे है, यह अनुमोदनीय है, परंतु काल प्रवाह और लोक व्यवहार के कारण विधानो में प्रविष्ट हो चुकी कुछ कुप्रथाएँ विधानो के मूल को खत्म कर रही है । परिणामतः पूजन पढ़ाने के आनंद में संतोष मानने से उसके मूल फल की ओर नजर भी नहीं जाती, यह हमारी अज्ञानता है ।

आज पूजनों में कुछ बातो में बहुत दुर्लक्ष्यता का सेवन हो रहा है, इसमें भी पूजन अखंड कैसे बने इस विषय में विचारणा करने जैसी है । मंत्रशास्त्र के नियमानुसार कोई भी विधान अखंड रुप से शुद्धिपूर्वक किया जाए तो वह फलीभूत हो सकता है ।

आज पढ़ाए जाने वाले पूजनो में सर्वव्यापकता से खंडित पूजन का दोष लग रहा है । कोई भी मंत्र, विधान या अनुष्ठान प्रारंभ से अंत तक एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाए, तो वह विधान अखंडित–सलंग बनता है ।

किसी भी अनुष्ठान के प्रारंभ में आत्मरक्षा, मंत्रस्नानादि विधान किए जाते है और पूजा अनुष्ठान के अंत में क्षमापना विधान कर विधान में दोष लगा हो, उसकी माफी मांगने की विधि की जाती है । अथ से इति तक एक अखंड विधान एक ही व्यक्ति द्वारा (आराधक बदले बगैर) होना जरुरी है । सगे–संबंधियो को लाभ मिले, ऐसे शुभाशय को आगे करके जानते–अजानते अखंड पूजन के मूल को नष्ट करने से क्या लाभ ?

वर्तमान में भी सिद्धचक्रजी जैसे विविध पूजनो में पूजन कैसे खंडित होते है, जरा देखे –

१) अरिहंत पद पूजन में बैठनेवाले ने आत्मरक्षा–मंत्रस्नान अदि पूर्व विधान किए हो, पर अन्य पूजन या क्षमापना–विधान के समय वो भाई कहाँ घूमते होंगे ?

२) अंत में शांतिकलश आदि करने वाला क्षमापनादि विधान करे, परंतु पहले का आत्मरक्षा मंत्रस्नान आदि विधान नहीं किया हो ।

३) बीच के सिद्धपदादि तमाम पूजनो में बैठने वाले न तो आत्मरक्षादि विधान कर पाते है, और न अंतिम विधान स्वरुप क्षमापनादि करते है ।

पूजनमें बैठने वाले तीनो प्रकार के व्यक्तियों को विधिभग्न दोष लगता है , ऐसी स्थिति में पूजन केसे फलीभूत बन सकता है ?

परिवार के सभी स्वजनो को लाभ मिले ऐसे सुंदर शब्दो द्वारा अपने से होने वाली अविधि, खंडितता को ढँक देते है ।

आश्चर्य तो यह है कि पूजन–विधि के मर्म से अनजान क्रियाकारकों ने ही आयोजक परिवारो को सूची थमा दी होती है कि, इतने जोड़े, इतनी कन्याएँ, इस पूजन में केवल भाई, इसमें मात्र बहने चाहिए, 'पूजन के पहले नामावली तैयार रखना' । विधि–विधान के क्षेत्रमें क्रियाकारकों में विधि के जानकार का विश्वास रखनेवाले गृहस्थ इस विषयमें विचार क्यों करेंगे ? वो तो पूजन में बैठने के लिए परिवार में जोड़े–कन्या आदि की सूची बनाना शुरु कर देते है ।

लगभग ११ लाख वर्ष पूर्व सिद्धचक्र–महिमा को उज्ज्वल बनाने वाले श्रीपाल मयणा ने साढ़े चार वर्ष सिद्धचक्र की आराधना कर अंत में उद्यापन में महोत्सवपूर्वक सिद्धचक्र पूजन सविधि पढ़ाया है। इसका विधान सिरि सिरिवालकहा नामक ग्रंथ में क्रमसर दर्शाया गया है ।

इस पूजन में श्रीपाल–मयणा एक पूजन के बाद खड़े हो गए होंगे ?

क्या उन्होने विद्या देवियों के पूजन में खड़े होकर कन्याओ को बैठाया होगा ? २४ यक्ष पूजन मयणा ने नहीं किया होगा ? नहीं, सिरि सिरिवाल कहा ग्रंथ में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि, आदि से अंत तक श्रीपाल–मयणा ने ही पूजन किया है । कहीं जोड़ा कहीं कन्या, कहीं भाई, कहीं बहन ही चाहिए, ऐसा कोई विधान नहीं है । जिसे भी पूजन करना हो वो अखंड़ता से पूजन कर सकता है । पूजन में बार–बार व्यक्तियों को बदलने में पूजन खंडित करने का कितना बड़ा दोष लगता है ।

और तो और, पूजन के आदि से अंत तक की अखंड भक्ति के बदले पूजन में कौन बैठा ? अब कौन बैठेगा ? कोई स्वजन तो नहीं रह गया न ? इस देखरेख में ही पूजन पूर्ण हो जाता है । पूजन में भगवान का ध्यान किया या स्वजनो का ? यह कौन सोचता है ?

अखंड विधि सम्हालना हो और व्यवहार भी सम्हालना हो तो भी दोनो सम्हल सके ऐसी व्यवस्था पहले से ही जमाई जा सकती है ।

सगे–संबंधियो में जिन्हे भी पूजन का लाभ देना हो, उतनी पीठिका बनाकर अलग–अलग यंत्र रखकर मुख्य यंत्र पर किया जानेवाला विधान सब यंत्रो पर किया जाए, पर हाँ, सबको पहले ही स्पष्ट सूचना कर देना आवश्यक है कि, आदि से अंत तक पूजन का लाभ देना है तो बीच में से छोड़ नहीं सकते ।

इस तरह ११/२१/२७ या उससे अधिक पीठिका करने से व्यवहार और विधि दोनो मर्यादाओ का पालन हो जाता है । बाकी तो 'भेड़...चाल' में चलने से विधिभग्न, अनादर या अबहुमान का दोष जरुर लगता है । 'सुज्ञेषु किं बहुना'

परिवार या संघ में होनेवाले प्रसंगो में पूजन में विधिभग्न के दोष से बचकर अखंड पूजन कर पूर्ण फल पाएँ, इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ ।

–नयचंद्रसागर

श्रीपाल कथा–प्रसंग–नामावलि संक्षिप्त में

राजगृही–गौतम स्वामी आगमन–श्रेणिक वंदनार्थे गमन–देशना प्रारंभ–नवपद महिमा–श्रीपाल जैसे–कौन श्रीपाल?

- भरतक्षेत्र–मालवदेश–उज्जयनी नगरी–प्रजापाल राजा–दो राणी

१) सौभाग्यसुंदरी : मिथ्याधर्मी–पुत्री सुरसुंदरी–पं.शिवभूति–परीक्षा–अरिदमन–विवाहमुहूर्त पूछा–शुभ मुहूर्त गया–कोढिये को दिलाया शुभ मुहूर्त

२) रुपसुंदरी : सम्यक्धर्मी–पुत्री मदनसुंदरी–पं. सुबुद्धि–परीक्षा–विवाद–कोढियो उंबर–रात में वार्तालाप–सुबह जिनमंदिर में–माला,बीजोरे का उछलना मयणा,उंबर का ग्रहण करना–पौषधशाला–मुनिचंद्रसूरि–कौन नरोत्तम ? –मयणा रुदन–सिद्धचक्र यंत्र उद्धरण–विधि सूचना–साधर्मिक भक्ति प्रेरणा–उंबर पूजा विधि अभ्यास

–आ.सु.८–सिद्धचक्र आराधना–पहेले, नौंवे दिन शांति–कौशांबी से माता आगमन

–रुपसुंदरी का रुदन–कमलप्रभा द्वारा परिचय–प्रजापाल द्वारा राजमहल में–गाँववासीओ के शब्द

- करवाल लेकर देशाटन के लिए–गीरी, चंपकवृक्ष के नीचे–जाप करता पुरुष–सिद्धविद्य होना औषधि युगल–जलतारिणी शस्त्रनिवारीणी–तलेटी धातुवादी–रससिद्धि–सर्व सुवर्णदान–नही लेना–वस्त्र के छोर पर बांधना

- भृगुकच्छ–धवल–जहाज चलाया–देशाटन की इच्छा–धवल को वेतन का पूछना–१ हजार दिनार x १0000 भट्ट = दस क्रोड वेतन–आखिर में किराया तय कर के रत्नद्विप की ओर जाना

१) बब्बरकुट जल–इंधन के लिए–महाकाल राजा–पुत्री **मदनसेना** लग्न–९ नाटक–६४ कूप स्थंभवाला यान पात्र भेंट में

२) रत्नद्वीप–घुडसवार–रत्नसंचया नगरी–स्वर्णकेतु राजा–४ पुत्रो उपर–पुत्री **मदनमंजूषा**–महापूजा–वर चिंता–द्वार बंध–खुलना–कुल इत्यादि पृच्छा–विद्याधर आगमन–देशना–श्रीपाल परिचय–जिनमंदिरे भ्रूविभ्रम–तात तुल्य–यान चलना–मात्सर्य–समुद्र क्षेप

३) कोंकण–थाणा–वसुपाल राजा–नैमित्तक–जमाई कौन ? पृच्छा–चंपकवृक्ष–स्थिर छाया के नीचे सोया हुआ पुरुष–**पुत्री मदनमंजरी**–लग्न–स्थगीधर पद

धवल–डुंब का कलंक–कुल का पूछना–बाहु–जहाज में दो स्त्री–वसुपाल प्रसन्न–भगिनी पुत्र–वधार्थे–छुडाया–अपने महल में–छुरी से धवल की मौत

४) श्रीपाल राजवाटिका–सार्थवाह–कुंडलपुर–१00 योजन–मकरकेतु राजा–**गुणसुंदरी**–वीणादक्ष–नवपद ध्यान–विमलेश्वर–हार–वामनरुप–विवाह

५) मुसाफिर–कांचनपुर–३0 योजन–वज्रसेन राजा–**त्रैलोक्यसुंदरी**–स्वयंवर मंडप–कुब्ज

६) कोइ चरपुरुष–सभा में आना– देव पतन–धारापाल राजा–पांच पुत्रो के उपर पुत्री–**शृगांरसुंदरी**–५ सखी–चित्त के भावो से समस्या का हल करे वो...

७) कोइ भट्ट–सभामें–कोल्लाल नगर में वीरपुरंदर राजा–**जयसुंदरी** पुत्री–राधावेध प्रतिज्ञा–सभी स्त्रीओ को बुलाने के लिए आदमीओ को भेजना–सभी स्त्रीओ+सैन्य के साथ ठाणा आना–वसुपाल मामा द्वारा राज्याभिषेक–कालान्तरे उज्जयिनी नगरी की ओर प्रयाण–माता को नमन करने जाना...

८) सोपारक नगर–महासेन राजा–**तिलकसुंदरी**–सर्पदंश से दुःखी–हारजल से बच जाना–विवाह

• उज्जैन–श्रीपाल द्वारा नगर घेरना–नगरी के दरवाजे बंध–रात को श्रीपाल घर पर–सास, बहु की बातें–दोनो को लेकर तंबू में–प्रजापाल कंधे पर कुल्हाडी रखकर–श्रीपाल का सामने जाना–नाटक–सुरसुंदरी प्रागट्य

• स्वराज्य के लिए अजितसेन को संदेशा–युद्ध–अजितसेन पराजय–दीक्षा–पुत्र को राज्य

• पूर्व भव–हिरण्यपुर श्रीकान्त–श्रीमती–शिकार प्रिय–रजोहरण सहित मुनि को चामरवाला कोढिया–५00 उल्लंठो के द्वारा पत्थर, लाठी से पीडा–नदी किनारे मुनि–गवाक्ष में राजा–मुनि को देखना–निकालो, निकालो डुंब है–श्रीकान्त में गुण– सभी बाते श्रीमती को कहना–गुरु से प्रायश्चित्त–नवपद आराधना

• सिद्धचक्र ४ ।। वर्ष के बाद उजमणा–पूजन–मांडला–वेदिका के उपर

• भुवनपाल पुत्र को राज्य–नवपद के ध्यान में लीन–नौवे भव में मोक्ष

वाचक की नोंध

पू.आचार्यदेव श्री नयचंद्रसागरसूरि म.सा. द्वारा संपादित पुस्तके

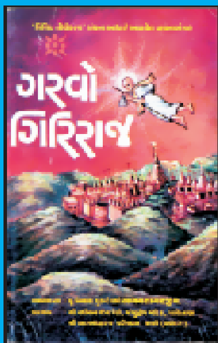

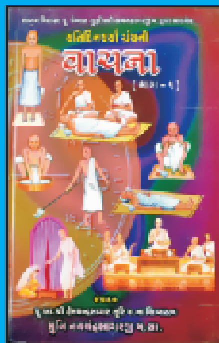

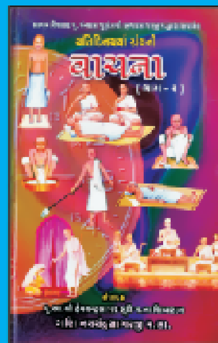

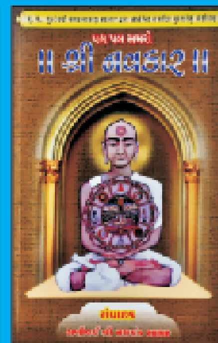

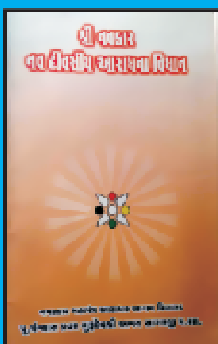

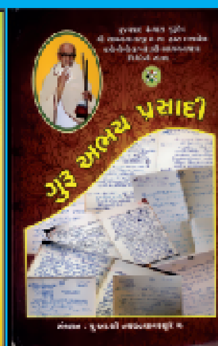

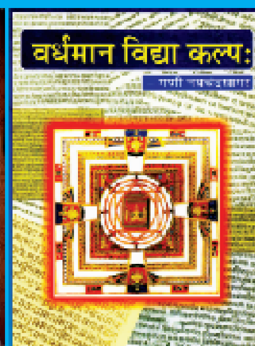

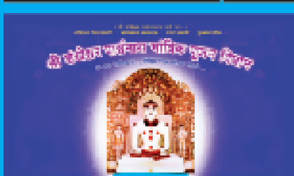

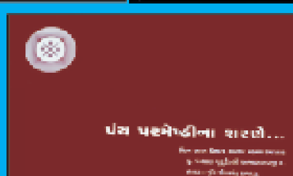

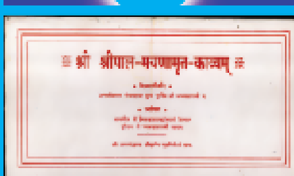

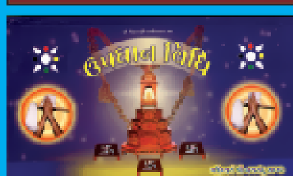

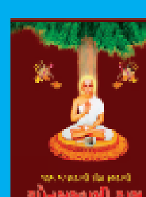

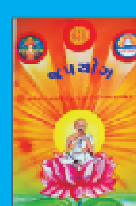

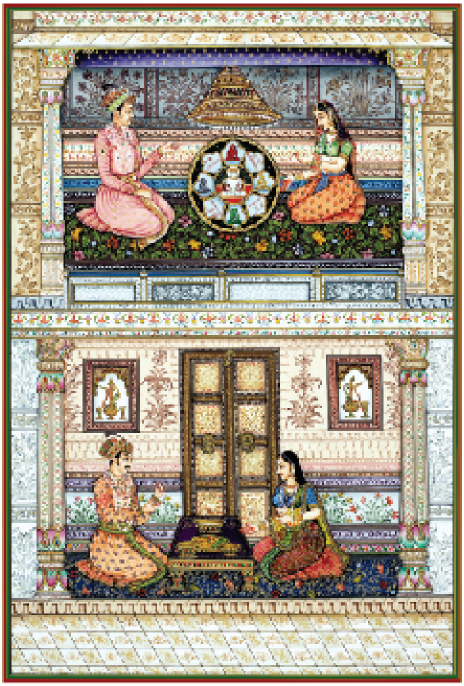
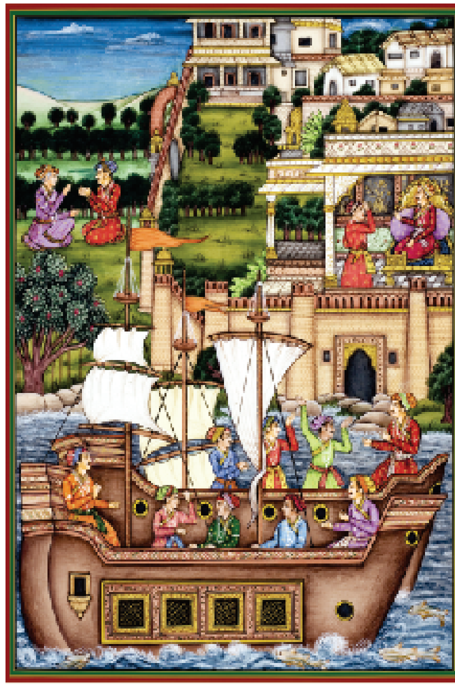

Mann 81281 45044